Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/2014-16
R.N.I.No. 51966/1989,ISSN 2455-2399
Date of Publication 15th November 2016
Date of posting 15th & 20th November 2016

नवम्बर 2016 • वर्ष 28 • अंक 11 • मूल्य ₹ 40

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

भू-पुरातत्वीय इतिहास की खोज में
'ऑप्टिकली स्टिमुलेटेड लुमनेसन्स'

* एंबेडेड सिस्टम
* क्रायोजेनिक तकनीक में आत्मनिर्भरता
* मसालों का विज्ञान

RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
नवम्बर 2016
वर्ष 28
अंक 11

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित

सलाहकार मण्डल
शरद चंद्र बेहार, डॉ. वि.दि. गर्दे, देवेन्द्र मेवाड़ी,
मनोज पटैरिया, डॉ. संध्या चतुर्वेदी,
प्रो. विजयकांत वर्मा, डॉ. रविप्रकाश दुबे

संपादक
संतोष चौबे

कार्यकारी संपादक
विनीता चौबे

उप–संपादक
पुष्पा असिवाल
सह–संपादक
मनीष श्रीवास्तव, मोहन सगोरिया, रवीन्द्र जैन

संस्थागत सहयोग
अमिताभ सक्सेना, शैलेष पांडेय, डॉ. राघव, डॉ. विजय सिंह,
डॉ. अनुराग सीठा, डॉ. सत्येन्द्र खरे, संतोष शुक्ला
राज्य प्रसार समन्वयक
शशिकांत वर्मा, लातूर सिंह वर्मा, केशव सहाय, लियाक़त अली खोखर,
राजेश शुक्ला, दर्शन व्यास, शलभ नेपालिया, अंबरीष कुमार,
हरीश कुमार पहारे, शैलेन्द्र मिश्रा
क्षेत्रीय प्रसार समन्वयक
निशांत श्रीवास्तव, राजीव चौबे, जितेन्द्र पांडे, लुकमान मसूद,
आर.के. भारद्वाज, संजीव गुप्ता, रवि चतुर्वेदी, प्रवीण तिवारी,
अरुण साहू, अभिषेक अवस्थी, विजय श्रीवास्तव, के.आई. जावेद,
असीम सरकार, अमृतेष कुमार, योगेश मिश्रा, संदीप वशिष्ठ,
संतोष कुमार पाढ़ी, दर्शन व्यास, मनीष खरे, आबिद हुसैन भट्ट, दलजीत सिंह,
राजन सोनी, अजीत चतुर्वेदी, अनिल कुमार, अमिताभ गांगुली,
कुम्भलाल यादव, राजेश बोस, देबदत्ता बॅनर्जी, नरेन्द्र कुमार

समन्वयक प्रचार एवं विज्ञापन
राजेश पंडा
आवरण एवं डिजाइन
वंदना श्रीवास्तव, अमित सोनी, मुकेश सेन

आधुनिक विज्ञान की असाधारण विशेषताओं में से एक यह भी है कि एक अनुसंधानकर्ता इस बात को स्पष्ट तौर पर समझ सकता है कि उसके समकालीन अथवा पूर्व के विचार सही हैं अथवा गलत। जबकि इससे पहले न तो ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध थीं और न ही वर्तमान में धीमी गति से आगे बढ़ने वाले क्षेत्रों में ऐसी सुविधा उपलब्ध है।

– फ्रैंसिस क्रिक

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 268

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

अनुक्रम

विज्ञान वार्ता

विज्ञान लेखन के प्रभाव का मूल्यांकन आवश्यक

● मीरा नांदगांवकर से मनीष मोहन गोरे की बातचीत /05

विज्ञान आलेख

मध्यकालीन भारत : भारतीय विज्ञान का अंधयुग

● शुकदेव प्रसाद /10

भू-पुरातत्त्वीय इतिहास की खोज में 'ऑप्टिकली स्टिमुलेटेड लुमनेसन्स'

● डॉ. कपूरमल जैन /13

भविष्य जैविक खेती का है

● डॉ. दिनेश मणि /19

नया सीखने के लिये जरूरी है पुराना भूलना

● प्रमोद भार्गव /27

अंधेरे की ओर ले जाती ज्यादा रोशनी

● डॉ. विज़न कुमार पाण्डेय /30

अंतरिक्ष आलेख

अंतरिक्ष अन्वेषण के कार्य और योजनाएँ

● कालीशंकर /34

क्रायोजेनिक तकनीक में आत्मनिर्भरता

● शशांक द्विवेदी /39

दैनिक विज्ञान

मसालों का विज्ञान

● डॉ. स्वाति तिवारी /42

कॅरियर

एम्बेडेड सिस्टम

● संजय गोस्वामी /49

गतिविधियाँ

आईसेक्ट समाचार /54

आईसेक्ट विश्वविद्यालय समाचार /57

आखिरी पन्ना

विज्ञान का ऐतिहासिक पृष्ठ

● जे.बी.एस. हाल्डेन /58

पत्र व्यवहार का पता

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047

फोन : 0755-6766166 (डेस्क), 0755-6766101, 0755-2432801 (रिसेप्शन), 0755-6766110(फैक्स)

e-mail : electroniki@electroniki.com, website : www.electroniki.com वार्षिक शुल्क : 480/- प्रति अंक : 40/-

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है।

सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा पहले-पहल प्रिंटरी, 25 ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- संतोष चौबे।

विज्ञान लेखन के प्रभाव का मूल्यांकन आव यक

मीरा नांदगांवकर से मनीष मोहन गोरे की बातचीत

समाज के शैक्षिक-सांस्कृतिक विकास में विज्ञान साहित्य सृजन की अहम भूमिका होती है। ज्ञान की यह एक विशिष्ट धारा है और इसके सर्जक विशेष प्रतिभा के धनी होते हैं। सृजन से कम महत्व अनुवाद का नहीं होता। मेरा मानना है कि अनुवाद कार्य में कहीं अधिक संजीदगी और गंभीरता की दरकार होती है। दो विपरीत भाषाओं के साथ-साथ रचना के विषय का ज्ञान इसमें अनिवार्य होता है। मगर दुर्भाग्य से अनुवाद जैसे महत्वपूर्ण कार्य को साहित्य सृजन जगत में अपेक्षित सम्मान नहीं दिया जाता है। समय-समय पर देश-दुनिया के महान लेखक स्वयं अनुवाद करके साहित्यिक जगत में इसके महत्व को उजागर करते रहे हैं। अनुवाद की अपनी एक संस्कृति होती है और इससे समय तथा समाज को बहुत लाभ मिलता है। सोचिये, अगर विश्व भ्रमण पर निकले यात्री दुनिया के समाज-संस्कृति-व्यवहार के बारे में दूसरी भाषाओं में नहीं लिखते तो आज हम उन साहित्य और ज्ञान से वंचित रह जाते। इस बात से हम आप मुँह नहीं मोड़ सकते कि अनुवाद एक ऐसा पुल है जो किसी भी देश का किसी भी भाषा में मौजूद साहित्य दुनिया की समस्त भाषाओं में उपलब्ध करा दिया जाता है।

आज के वैज्ञानिक और डिजिटल युग में विज्ञान व तकनीकी जैसे क्षेत्रों में अनुवाद का महत्व और बढ़ जाता है। विज्ञान साहित्य के अनुवाद की परम्परा को आगे विस्तार दिया जाना आवश्यक है। इसके साथ ही साथ इस विरल कार्य में संलग्न विद्वानों को उचित प्रोत्साहन दिया जाना भी उतना ही जरूरी है। 'इलेक्ट्रानिकी आपके लिए' के पाठकों के सम्मुख इस बार वैज्ञानिक साहित्य की एक अनुभवी अनुवादक मीरा नांदगांवकर जी से अनुवाद के सरोकारों, चिंताओं-चुनौतियों और संभावनाओं पर विस्तृत बातचीत की जा रही है। उम्मीद है कि इस सार्थक चर्चा से पाठक जरुर लाभांवित होंगे।

1992 में मुझे विज्ञान से संबंधित अनुवाद का मौका पहली बार मिला। अन्य सरकारी महकमों के समान जैव प्रौद्योगिकी विभाग (भारत सरकार) के पुणे स्थित प्राणियों के ऊतक एवं कोशिका संवर्धन से जुड़े राष्ट्रीय संस्थान (NFATCC) के कार्य वृतान्त को हर साल संसद में अंग्रेजी और हिंदी में प्रस्तुत किया जाता है। यह कार्य मैंने स्वीकार तो कर लिया मगर जब मूल सामग्री को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा तब उसकी कठिनाई समझ में आ गई। मेरे बड़े बेटे अजय ने उस कार्य मेरी सहायता की। सबसे पहले हम दोनों ने तकनीकी शब्दकोश से आवश्यक शब्दों के सही अर्थ खोजकर अपनी एक अलग डिक्शनरी बनाई और फिर जाकर उस अनुवाद को अंजाम दिया।

आपकी परवरिश और शैक्षिक पृष्ठभूमि के बारे में बताएँ।

मेरा जन्म 1942 में मध्य प्रदेश के धार नगर में हुआ। मेरे पिता सरकारी विभाग में कार्यरत थे और आगे जाकर महाविद्यालय के प्राचार्य बने। उनकी नौकरी में बार-बार तबादले होते थे। इस तबादले के कारण मेरी विज्ञान की उपाधि तीन विश्वविद्यालयों से मिली। मगर इसका एक बड़ा फायदा मुझे मिला। अनेक विद्वान गुरुओं का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। गणित और विज्ञान में मेरी रूचि थी परंतु उस जमाने में भी हिंदी की ओर मेरा रुझान था। स्नातकोत्तर की पढ़ाई के दौरान मेरा विवाह हो गया और मैं पुणे जैसी एक सांस्कृतिक नगरी में 1970 में आ गई। भारतीय शास्त्रीय संगीत से मुझे बचपन से ही लगाव था जो आज भी यथावत है।

आपको विज्ञान लेखन और वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद के बारे में सबसे पहले कहाँ और कैसे जानकारी मिली?

विवाह के बाद पुणे आकर मैं अपनी गृहस्थी में जुट गई। दो बच्चे हुए। मेरे पति अशोक नांदगांवकर पुणे विश्वविद्यालय में सेवारत थे और हम विश्वविद्यालय परिसर में ही रहते थे। विश्वविद्यालय का पुस्तकालय बहुत बड़ा और उच्च कोटि की पुस्तकों से भरा हुआ है। मेरे लेखन और अनुवाद कार्यों में मुझे इस पुस्तकालय का बहुत लाभ हुआ। वहाँ मौजूद मराठी भाषा की श्रेष्ठ पुस्तकें ने मुझे बेहद प्रभावित किया। जाने-माने लेखकों के साहित्य ने मेरी सूझ-बूझ को उन्नत किया। 1982 में मेरा परिचय मराठी के मूर्धन्य लेखक गोपाल नीलकंठ दांडेकर से हुआ। उनके बहुचर्चित मराठी उपन्यास 'मृण्मयी' का हिंदी अनुवाद करने का निर्देश उन्होंने मुझे दिया। वे स्वयं हिंदी भाषा के जानकार थे। उस समय हिंदी अनुवाद के विषय में मैंने सोचा भी नहीं था। बहरहाल मैंने तन्मय होकर यह अनुवाद कार्य किया जो कि बाद में दिल्ली के सस्ता साहित्य मंडल ने अथाह की थाह शीर्षक से 1989 में प्रकाशित हुआ। इसे लोगों ने बेहद सराहा और मेरे मन में विश्वास पैदा हुआ कि हिंदी अनुवाद मैं करने में समर्थ हूँ। सस्ता साहित्य मंडल के श्री यशपाल जैन साहब ने इसी तरह के कुछ और श्रेष्ठ उपन्यासों का हिंदी अनुवाद मुझे करने के लिए दिया। यहीं से अनुवाद का एक नया कार्य क्षेत्र मेरे लिए खुल गया जो आज तक जारी है।

आपने गणित विषय का अध्ययन किया है। अक्सर देखा जाता है कि गणित और विज्ञान के लोग साहित्य से दूर रहते हैं। आपका विज्ञान लेखन तथा अनुवाद की ओर रुझान कैसे हुआ?

अनुवाद के इस उपक्रम ने मेरे जीवन में और आनंद भर दिया। मैं मूलतः विज्ञान की विद्यार्थी होते हुए भी मैं तब तक विज्ञान के अनुवाद को लेकर सजग नहीं हो पाई थी। आस-पास के नवीं-दसवीं के बच्चों को गणित और विज्ञान मराठी में पढ़ाया करती थी।

1992 में मुझे विज्ञान से संबंधित अनुवाद का मौका पहली बार मिला। अन्य सरकारी महकमों के समान जैव प्रौद्योगिकी विभाग (भारत सरकार) के पुणे स्थित प्राणियों के ऊतक एवं कोशिका संवर्धन से जुड़े राष्ट्रीय संस्थान (NFATCC) के कार्य वृतान्त को हर साल संसद में अंग्रेजी और हिंदी में प्रस्तुत किया जाता है। यह कार्य मैंने स्वीकार तो कर लिया मगर जब मूल सामग्री को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा तब उसकी कठिनाई समझ में आ गई। मेरे बड़े बेटे अजय ने उस कार्य मेरी सहायता की। सबसे पहले हम दोनों ने तकनीकी शब्दकोश से आवश्यक शब्दों के सही अर्थ खोजकर अपनी एक अलग डिक्शनरी बनाई और फिर जाकर उस अनुवाद को अंज़ाम दिया। वह अनुदित ब्यौरा संसद में भेजा गया और संस्थान को अनुदान मिल गया। मैं सोचती थी कि जिस मेडिकल साइंस का मुझे मुझे कोई ज्ञान नहीं था, उसका अनुवाद मैं कैसे कर पाई। इस बात से मुझे अपार खुशी मिली और मेरा आत्मविश्वास भी बढ़ा। इसके बाद मैंने उनके 1993 और 1994 की रिपोर्ट भी अनुवाद किये। इसके बाद 'वास्तुप्रकाश', 'घरेलू औषधियाँ', 'दंत चिकित्सा सहायक' आदि विज्ञान विषय अनुवाद किये। डॉ. सुलभ कुलकर्णी रचित 'नैनो टेक्नॉलॉजी' और डॉ. पंडित विद्यासागर द्वारा लिखित विज्ञान लेखमाला के मैंने हिंदी अनुवाद किये जिन्हें स्थानीय पत्रिका ने धारावाहिक के रूप में प्रकाशित किये। विद्यासागर जी के लोकप्रिय मराठी

विज्ञान उपन्यास 'सुपरक्लोन' का हिंदी अनुवाद करने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ। मराठी विज्ञान परिषद की मुंबई शाखा के डॉ.ए.पी. देशपांडे द्वारा भारत के प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. जयंत विष्णु नार्लीकर की मूल मराठी में लिखी चौदह विज्ञान कथाओं का हिंदी अनुवाद का प्रस्ताव मुझे भेजा गया। इस प्रस्ताव से मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई क्योंकि यह एक तरह से मेरा सम्मान था। पुस्तक रूप में डॉ. नार्लीकर जी की ये विज्ञान कथाएँ हिंदी में विज्ञान प्रसार, नोएडा (डीएसटी, भारत सरकार का एक स्वायत्त संस्थान) द्वारा प्रकाशित हुईं। विज्ञान आधारित साहित्य कृति के इस अनुवाद ने मेरे भीतर अनुवाद के क्षेत्र में गहरे विश्वास को जन्म दिया।

मराठी भाषा में विज्ञान साहित्य की वर्तमान स्थिति के विषय में हम जानना चाहेंगे। इस भाषा में विज्ञान साहित्य के भविष्य को आप किस तरह देखती हैं?

मराठी भाषा में विज्ञान साहित्य का दायरा शायद बहुत बड़ा नहीं है। इस भाषा में विज्ञानपरक लेख-उपन्यास, विज्ञान कथा लिखने वाले लेखक बहुत ही कम हैं। वैज्ञानिक जानकारी के लिए लेख अवश्य लिखे जाते हैं। महाराष्ट्र के वैज्ञानिकों में डॉ. नार्लीकर, डॉ. विद्यासागर, डॉ. अनिल काकोदकर, डॉ. तुपे, डॉ. निरंजन घाटे, डॉ. बाल फोंडके, डॉ. सुबोध जावडेकर जैसे लोग विज्ञान से संबंधित लेख, उपन्यास और अखबारों के लिए स्तम्भ लेखन करके इन विधाओं का विकास कर रहे हैं।

समग्रता में विज्ञान विषयक साहित्य के महत्व को समाज और देश के विकास की दृष्टि से कैसे व्याख्यायित करेंगी?

इस सवाल का जवाब मैं कुछ विस्तार से देना चाहूँगी। विज्ञान विषयक लेखन का वर्तमान समाज में बहुत बड़ा महत्त्व मुझे दिखाई देता है। देश-समाज के विकास में यह लेखन निश्चित रूप से सहायक है। मूलतः विज्ञान के मूलभूत सूत्रों को सरल और सुग्राह्य भाषा शैली में विद्यार्थियों तक पहुँचाना महत्वपूर्ण है। पाठ्य पुस्तकों से हटकर विज्ञान लेखन के द्वारा यदि बच्चों और युवाओं को विज्ञान की जानकारी रोचक शैली में दी जाएगी तो उनका रुझान विज्ञान की ओर अवश्य बढेगा। पुणे में एक महिला वैज्ञानिक डॉ. सुजाता विर्धे ने छोटे-छोटे खिलौनों के माध्यम से भौतिकी के सिद्धांतों को स्पष्ट किया जिससे बच्चों में भौतिकी में खूब रूचि पैदा हुई। विज्ञान कथाओं के विकास के द्वारा भी बच्चों और युवाओं में वैज्ञानिक संस्कृति का विकास किया जा सकता है। विज्ञान कथा अपने पाठकों के मन में कल्पनाशीलता और समाज की समस्याओं के प्रति एक सकारात्मक भावना को बढ़ावा देती है। विज्ञान साहित्य में इस तरह की विधाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिए। विज्ञान साहित्य का देश की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद बेहद जरूरी है। इस प्रयास से अखिल भारत में विज्ञान साहित्य का प्रसार संभव हो सकेगा जिसके फलस्वरूप विद्यार्थियों के साथ-साथ जन सामान्य को विज्ञान के पहलुओं की जानकारी मिलेगी और साथ ही साथ उनमें वैज्ञानिक सूझ-बूझ भी पैदा होगी। आज का युग डिजिटल युग है। यह माध्यम समाज के विकास के लिए बेहद आवश्यक है। वर्तमान केंद्र सरकार द्वारा डिजिटल इंडिया के माध्यम से देश के गाँव-गाँव को इंटरनेट से जोड़कर लोगों के रोजमर्रा के काम आसान बनाया जा रहा है। यह कितना सार्थक प्रयास है। डिजिटल माध्यम का स्याह पक्ष भी है। इससे समाज की नई पीढी गुमराह भी हो रही और अपना समय व्यर्थ कर रही है। अभिभावक और शिक्षक इन्हें सही राह दिखने में इनकी मदद कर सकते हैं।

विज्ञान विषयक लेखन का वर्तमान समाज में बहुत बड़ा महत्त्व मुझे दिखाई देता है। देश–समाज के विकास में यह लेखन निश्चित रूप से सहायक है। मूलतः विज्ञान के मूलभूत सूत्रों को सरल और सुग्राह्य भाषा शैली में विद्यार्थियों तक पहुँचाना महत्वपूर्ण है। पाठ्य पुस्तकों से हटकर विज्ञान लेखन के द्वारा यदि बच्चों और युवाओं को विज्ञान की जानकारी रोचक शैली में दी जाएगी तो उनका रुझान विज्ञान की ओर अवश्य बढेगा।

विज्ञान साहित्य के अनुवाद के महत्त्व के बारे में बताएँ।

विज्ञान साहित्य का भारत की समस्त भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए, यही समय की माँग है। इस बात को लेकर मेरे मन में तीन विचार दृढ हैं : • प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर बच्चों के लिए विज्ञान से जुड़ी प्रेरक कहानियां, वीडियो और खेल-खिलौने होने चाहिए। उदाहरण के लिए मीर पब्लिशर्स, मास्को द्वारा प्रकाशित विज्ञान पुस्तकों में वैज्ञानिक तथ्यों को रोचक और सरल भाषा में लिखा जाता है। साथ ही यह साहित्य बच्चों के लिए कम कीमत पर उपलब्ध कराया जाता है। • माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों पर केंद्रित उपयुक्त सरल साहित्य, ऑडियो-वीडियो द्वारा प्रसारित होनी चाहिए। • जन साधारण में विज्ञान की जानकारी और

अनुवाद और विशेष तौर पर विज्ञान साहित्य का अनुवाद सजगता से करना होता है। इसमें जरा भी तोड़-मरोड़ की अनुमति नहीं होती। जिस भाषा में यह मौलिक साहित्य उपलब्ध है और जिस भाषा में उसका अनुवाद किया जाना है, उन दोनों भाषाओं तथा विज्ञान का अच्छा ज्ञान अनुवादक के पास होना आवश्यक है। अनुवाद प्रक्रिया में इसे हम 'परकाया प्रवेश' कहते हैं। साधारण शब्दकोशों में विज्ञान और तकनीकी शब्दों के सटीक अर्थ आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इसलिए तकनीकी शब्दकोश और थिसारस की सहायता आवश्यक हो जाती है। सही अर्थ खोजना अपने आप में एक चुनौती होती है और अनुवादक को इसमें आनंद आता है। अनुवादक को यह बात अच्छे से समझ में आ जानी चाहिए कि मूल लेखक अपनी रचना में क्या कहना चाहता है।

इससे संबंधित रूचि का विकास करने के लिए विज्ञान कथा, विज्ञान उपन्यास, जीवनी, विज्ञान लेख अधिक से अधिक लिखा जाना चाहिए और इन विधा के लेखकों को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। विज्ञान साहित्य समाज को केवल उपलब्ध करा देना ही पर्याप्त नहीं है। इसके प्रभाव का मूल्यांकन भी आवश्यक है। इस दिशा में बनाई गई राष्ट्रीय नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन और उसकी निगरानी भी जरूरी है।

वैज्ञानिक साहित्य अनुवाद की प्रमुख चुनौतियों और समस्याओं पर प्रकाश डालें। इनसे कैसे निजात मिल सकती है?

अनुवाद और विशेष तौर पर विज्ञान साहित्य का अनुवाद सजगता से करना होता है। इसमें ज़रा भी तोड़-मरोड़ की अनुमति नहीं होती। जिस भाषा में यह मौलिक साहित्य उपलब्ध है और जिस भाषा में उसका अनुवाद किया जाना है, उन दोनों भाषाओं तथा विज्ञान का अच्छा ज्ञान अनुवादक के पास होना आवश्यक है। अनुवाद प्रक्रिया में इसे हम 'परकाया प्रवेश' कहते हैं। साधारण शब्दकोशों में विज्ञान और तकनीकी शब्दों के सटीक अर्थ आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इसलिए तकनीकी शब्दकोश और थिसारस की सहायता आवश्यक हो जाती है। सही अर्थ खोजना अपने आप में एक चुनौती होती है और अनुवादक को इसमें आनंद आता है। अनुवादक को यह बात अच्छे से समझ में आ जानी चाहिए कि मूल लेखक अपनी रचना में क्या कहना चाहता है। अर्थ का अनर्थ न हो जाए, यह भी एक चुनौती है। डीटीपी में भी अनेक त्रुटियां रह जाती हैं इसलिए उस स्तर पर भी अचूक संशोधन (proof reading) परम आवश्यक होता है।

अनेक शैक्षिक और सामाजिक साहित्य के साथ-साथ आपने वैज्ञानिक साहित्य के मराठी तथा हिंदी भाषाओं में सार्थक अनुवाद किये हैं। आपके अनुवाद को लेकर पाठकों की क्या प्रतिक्रियाएँ और प्रेरणा मिलीं?

अनुवाद के क्षेत्र से जुड़ना मेरे जीवन में एक संयोग और सौभाग्य दोनों है। मुझे अपने जीवन में विज्ञान क्षेत्र की जानी-मानी हस्तियों की रचनाओं के अनुवाद का अवसर मिला, इससे सुखद बात क्या हो सकती है। मेरे अनुवाद से जुड़ी पाठकों की प्रतिक्रियाएँ अधिकतर मूल लेखक और प्रकाशकों के जरिये मेरे पास आईं। मेरे जीवन के प्रथम अनुवाद 'अथाह की थाह' को हिंदी के जाने-माने लेखक वसंत देव ने पढ़ा और उसे उन्होंने बहुत पसंद किया। उन्होंने अपने पत्र में मुझे लिखा था 'इस पुस्तक को पढ़ कर मूल पुस्तक का आनंद आया। इसे मैं अनुवाद मानता हूँ। आपको बरगद के पेड़ के पातों जितने आशीर्वाद। आगे बढ़ती रहें।' इस पत्र ने मुझे प्रेरणा दी और मेरा हौसला भी बढ़ाया। राज्य मराठी विकास संस्थान, महाराष्ट्र राज्य की अनुवादमाला में 'राजमाची का बुध' नामक उपन्यास के लिए, हिंदी के मूर्धन्य लेखक और गीतकार गुलजार के द्वारा मुझे सम्मानित किया गया। इसी प्रकार नार्लीकर जी ने अपनी पुस्तक के हिंदी अनुवाद के लिए मुझे बधाई और धन्यवाद दिया।

अनुवादकों के लिए प्रशिक्षण या कार्यशालाओं की जरूरत क्या वाकई में है या अनुभव से ही इनका विकास होता है?

कोई भी व्यक्ति अपने आप में परिपूर्ण नहीं होता। यदि किसी एक रचना का अनुवाद भिन्न-भिन्न लोग करते हैं तब प्रत्येक की शैली तथा शब्द संपदा बहुत मायने रखती है। जब तक कोई ज्ञानी व्यक्ति हमें खामियों से परिचित नहीं कराता है, अपना काम हम सौ फीसदी सही और शुद्ध मानते हैं जो कि एक भ्रम है। किसी भी कला का प्रशिक्षण कार्यशालाओं में प्राप्त अनुभव द्वारा उसमें अवश्य निखार लाता है। अपनी अत्यंत व्यस्तता के कारण मुझे अनुवाद कार्यशालाओं में हिस्सा लेने का सुअवसर नहीं मिल पाया। हाँ, पुणे विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर केशव प्रथमवीर का मार्गदर्शन मुझे अवश्य मिल जाता है। रही अनुवाद प्रक्रिया के विकास की बात, मैं अपने स्वयं के अनुभवों से कह सकती हूँ कि इसके लिए एक अनुभवी और विद्वान व्यक्ति से मार्गदर्शन मिले तो लेखन-अनुवाद में बेहतरी आती है।

वैज्ञानिक साहित्य के नज़रिये से मौलिक लेखन और अनुवाद को अलग-अलग किस तरह परिभाषित करेंगी? इसके साथ ही, भावी

अनुवादकों को आप क्या सलाह देना चाहेंगी?

साहित्य की कोई भी विधा क्यों न हो, उसमें लेखक की अपनी मूल प्रतिभा होती है। वह उसकी अपनी सर्जनशीलता का प्रतीक होता है। परन्तु अनुवाद का क्षेत्र सर्वथा अलग होता है। लेखक की मूल कृति को कहीं पर भी बदलने का अनुवादक को अधिकार नहीं होता। अनुवाद करते समय मूल आशय या भाव को समझ कर सटीक परन्तु आकर्षक शब्दों का चयन करते हुए अनुवाद करना सफल अनुवाद की कुंजी है, ऐसा मेरा मानना है। अनुवाद में जब मूल कृति जैसा आनंद पाठक को मिले, तो वह उम्दा अनुवाद की कसौटी होती है।

मूल रचना में अगर वाक्य रचना क्लिष्ट है तब अनुवादक को चाहिए कि मूल आशय को छोटे-छोटे वाक्यों में लिखें। अमूमन यह समझा जाता है कि मूल की अपेक्षा अनुवाद 10 फीसदी कम प्रतीत होता है। परंतु कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं कि 'प्रत्यक्ष से प्रतिमा उज्ज्वल' प्रतीत होती है। यह अनुवादक की श्रेष्ठता को दर्शाता है। आचार्य विनोवा भावे द्वारा किया गया भगवतगीता का अनुवाद 'गीताई' इसका प्रमाण है।

उत्कृष्ट वैज्ञानिक साहित्य के व्यापक प्रसार और ज्ञान के विस्तार हेतु देश की अनेक भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध हो सके, इसके लिए सरकार और सामाजिक/वैज्ञानिक संस्थाओं को क्या कदम उठाने चाहिए? आपकी राय।

विज्ञान के व्यापक प्रसार हेतु प्रादेशिक भाषाओं में मूल साहित्य का अनुवाद होना आवश्यक है और ये प्रयास हो भी रहे हैं। अब बात है उत्कृष्ट वैज्ञानिक साहित्य के प्रसार की। जिन लोगों ने विज्ञान में उपाधि हासिल की है, वे इस दिशा में अपनी अहम भूमिका निभा सकते हैं। कक्षा में सभी विद्यार्थियों को शिक्षक एक समान ध्यान नहीं रख पाते। इस समस्या से निजात पाने के लिए शिक्षा विभाग और समाज के बीच संवाद आवश्यक है।

विज्ञान के व्यापक प्रसार हेतु प्रादेशिक भाषाओं में मूल साहित्य का अनुवाद होना आवश्यक है और ये प्रयास हो भी रहे हैं। अब बात है उत्कृष्ट वैज्ञानिक साहित्य के प्रसार की। जिन लोगों ने विज्ञान में उपाधि हासिल की है, वे इस दिशा में अपनी अहम भूमिका निभा सकते हैं। कक्षा में सभी विद्यार्थियों को शिक्षक एक समान ध्यान नहीं रख पाते। इस समस्या से निजात पाने के लिए शिक्षा विभाग और समाज के बीच संवाद आवश्यक है। पढाई बोझ न बने इसके लिए शहर-गाँव के मोहल्लों-कालोनियों में शिक्षित लोगों को ज्ञान दान करना चाहिए। इसके साथ ही विज्ञान साहित्य के सरल-सहज अनुवाद बच्चों तक पहुँचे, यह सुनिश्चित किया जाए। क्योंकि मातृभाषा में दिया गया ज्ञान कारगर सिद्ध होता है।

विज्ञान लेखन के शैक्षिक महत्व पर आपकी क्या राय है?

विज्ञान लेखन का शैक्षिक महत्व बहुत ही व्यापक है। विज्ञान से संबंधित ज्ञान 'रटने की विद्या' ना होकर उसका समझ में आना अधिक महत्वपूर्ण है। देश की अनेक सरकारी और गैर संस्थाएँ इस दिशा में अपना योगदान दे रही हैं। विज्ञान प्रसार, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग के अलावा अनेक प्राइवेट प्रकाशक विज्ञान साहित्य को समाज के सामने ला रहे हैं। हमारा जीवन आज लगभग पूरी तरह विज्ञान और तकनीकी पर आधारित हो गया है इसलिए इन तकनीकों से जुड़ी जानकारी बोधगम्य भाषा और शैली में देने से जन साधारण लाभांवित होगा।

अनुवाद के विकास के लिए आप भविष्य में क्या करना चाहेंगी?

अनुवाद के विकास के सन्दर्भ में जिन अनुवादकों ने फ्रेंच, जर्मन, जापनीज से मराठी में अनुवाद किये हैं, उन्हें मैं मराठी से हिंदी में अनुवाद करने के लिए प्रयास करूँगी। विज्ञान साहित्य के अनुवाद से जुड़े सरोकारों पर इस सार्थक चर्चा के लिए आपको धन्यवाद!

mmgore1981@gmail.com

❑❑❑

मध्यकालीन भारत : भारतीय विज्ञान का अंधयुग

शुकदेव प्रसाद

हम मैक्समूलर, जॉन मार्शल, सर विलियम जोन्स, प्रिंसेप जार्ज, मैकडानल, हैल्सटेड, कोलब्रुक, स्ट्रेची, टेलर, स्मिथ, अलबेरूनी प्रभृति इतर भारतीयों के चिर ऋणी हैं जिन्होंने हमारे सदियों पूर्व के दबे पड़े वैज्ञानिक इतिहास के पन्नों की धूल झाड़ी और भावी पीढ़ियों और संसार के लिए नए प्रतिमान दिए। इन भारत विद्या विशारदों की अटूट निष्ठा से ही हम अपने अतीत में झाँक सके हैं और अपनी वैज्ञानिक विरासत पर नाज कर सकते हैं।

भारतीय इतिहास के दर्पण में जब हम झाँकते हैं तो इस काल खंड में हम अपने को ऐसे मोड़ पर पाते हैं जो संस्कृतियों के आदान-प्रदान का युग था, इस काल खंड में वैज्ञानिक और औद्योगिक ज्ञान का आदान-प्रदान अवश्य हुआ पर मौलिक संधानों और नवोन्मेषों की परम्परा लुप्त होती चली गई और अंधेरे का कुहासा छटा कहीं 20 वीं शती के पूर्वार्द्ध में जाकर जब 1921 में सैंधव सभ्यता उद्घाटित हुई और तभी हम भारतीयों को अपनी विशाल सांस्कृतिक और वैज्ञानिक परंपराओं का ज्ञान और भान हुआ, अन्यथा हम अंधेरे में पड़े थे और अपनी विशाल वैज्ञानिक थाती और परंपराओं को विस्मृति के गर्भ में दफन कर चुके थे। इसी नाते 12वीं शती के पश्चात विदेशी आक्रांताओं के युग की संधि रेखा और इसमें विस्तृत काल खंड भारतीय विज्ञान का अंधयुग (Dark Age) रहा है।

भला हो उन पाश्चात्य विद्वानों और पर्यटकों का जिन्होंने भारतीय विज्ञान में हम भारतीयों से कहीं अधिक दिलचस्पी ली और नाना तथ्य उद्घाटित किए, नाना संस्कृत की पोथियों का उद्धार किया और अनूदित होकर भारतीय ज्ञान-विज्ञान की हमारी थाती जब पश्चिम में पहुँची और प्रसरित हुई तो पाश्चात्य जगत विस्मित और विमुग्ध हो उठा। हम मैक्समूलर, जॉन मार्शल, सर विलियम जोन्स, प्रिंसेप जार्ज, मैकडानल, हैल्सटेड, कोलब्रुक, स्ट्रेची, टेलर, स्मिथ, अलबेरूनी प्रभृति इतर भारतीयों के चिर ऋणी हैं जिन्होंने हमारे सदियों पूर्व के दबे पड़े वैज्ञानिक इतिहास के पन्नों की धूल झाड़ी और भावी पीढ़ियों और संसार के लिए नए प्रतिमान दिए। इन भारत विद्या विशारदों की अटूट निष्ठा से ही हम अपने अतीत में झाँक सके हैं और अपनी वैज्ञानिक विरासत पर नाज कर सकते हैं।

बारहवीं शती में मुगल आक्रमण के बाद भारत की पुरातन संस्कृति और वैज्ञानिक ज्ञान भारत के कुछ ही हिस्सों महाराष्ट्र, गुजरात और दक्षिण भारत में सिमट कर रह गया। इतना अवश्य हुआ कि भारतीय ग्रंथों का चीनी, तिब्बती, अरबी और फारसी भाषाओं में अनुवाद हुआ और भारतीयों द्वारा अर्जित ज्ञान विदेशों में पहुँचा। जब बगदाद अरबी विद्या का केंद्र बना तो भारी संख्या में भारतीय ग्रंथों का अरबी में संस्कार हुआ। निस्संदेह गणित, खगोल, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी और दर्शन विषयक इन भारतीय ग्रन्थों ने इस्लामी शिक्षा और विचार पर व्यापक प्रभाव डाला। आगे चलकर अरब, फारस और मध्य एशिया के लोग भारत आये और यहां पर स्थापित हो गए। अपने साथ इन्होंने विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान का भारत में प्रसार भी किया और इस काल में उनका भारतीय जीवन पर प्रभाव भी पड़ा।

भारत गृह कलह और विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण से जब आक्रांत था तो यूरोप में विज्ञान का पुनर्जागरण हो रहा था। कोपरनिकस (1473-1543) ने टालेमी के भू-केंद्रिक सिद्धान्त (धरती ब्रह्मांड का केंद्र है और सूर्य उसका चक्कर लगाता है) के विरुद्ध आवाज उठायी। 1540 में उसने टालेमी के सिद्धान्त के उल्टे, अपने सूर्य केंद्रिक सिद्धान्त को 'डि रिवोल्यूशनिबस आरबियम कोएलिस्टियम' शीर्षक से लिपिबद्ध किया। चूंकि ये बातें बाइबिल के खिलाफ थीं, अतः निकोलस कोपरनिकस की पुस्तक बैन कर दी गई, कोपरनिकस की खुलेआम चर्चा करना भी अपराध माना जाता था। अपनी तरफ से कोपरनिकस के विचारों की पूरा हत्या करने तथा उसे काल के गाल में पूरी तरह डुबो देने का प्रयास पादरियों ने किया पर कोपरनिकस के विचारों को जिंदा किया युवा खगोलज्ञ जोर्डेनो ब्रूनो ने, जिसे रोम में 17 फरवरी, 1600 को जिंदा जला दिया गया। धर्म के ठेकेदारों ने कैसा अनूठा पुरस्कार दिया वैज्ञानिक खोज का!

लेकिन एक बार ज्ञान की जो दीप शिखा प्रज्ज्वलित हो चुकी थी, उसे निरंतर जलना ही था, तूफानों और झंझावातों से कतई अप्रभावित यह मशाल अविराम जलती रही। फिर भी कोपरनिकस के विचारों को पूर्ण स्वीकृति मिलने के लिए टाइको ब्राहे, ब्रूनो, गैलीलियो और जहन केप्लर तथा आइजक न्यूटन जैसी महान प्रतिभाओं के योग के लिए, इतिहास को 200 वर्षों की लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी तब कहीं जाकर अंधविश्वासी मान्यताएँ ध्वस्त हुईं और विशुद्ध विज्ञान का उदय हुआ और उसे मान्यता मिली। भारत भूमि में कभी भी ऐसा नहीं हुआ, यह भारतीयों की उदात्त भावना का प्रतीक है। लेकिन पश्चिम में जब-जब विज्ञान ने धर्म के विरुद्ध आवाज उठाई, अंधविश्वासों पर कटाक्ष किया तो एक वितंडा उठ खड़ा हुआ फिर भी यूरोप में वैज्ञानिक पुनर्जागरण का उत्स हो चुका था और नए-नए उद्यम और उपक्रम आविष्कारों की बाट जोह रहे थे और कुल मिलाकर 'औद्योगिक क्रांति' का बिगुल बज चुका था।

उन दिनों इंग्लैंड में खानों से पानी निकालने की समस्या बड़ी विकट थी, पानी निकालने के लिए 500 घोड़ों के रहट तक चलाये जाते थे। पानी भर जाने के कारण बहुत सी खानें बंद भी हो गईं। अतः खानों के मालिक ऐसे साधनों की खोज में थे जिससे आसानी से खानों का पानी उलीचा जा सके। ऐसे ही समय वोर्सेस्टर ने (1665) ने अपना वाष्प इंजन बनाया, अतः स्वाभाविक था कि उसका इंजन खान मालिकों में लोकप्रिय हो जाये और ऐसा हुआ भी पर इसमें और सुधार की आवश्यकता थी।

सन 1707 में फ्रांसीसी इंजीनियर डेनिस पेपिन ने वाष्प चालित नौका बनाई। यह अलग बात है कि उसके प्रयासों को जन सहयोग नहीं मिला। पेपिन के बाद सेवरी (1698) और टामस न्यूकोमेन (1712) ने वोर्सेस्टर के इंजन में कई सुधार किये और अपने भाप

सन 1707 में फ्रांसीसी इंजीनियर डेनिस पेपिन ने वाष्प चालित नौका बनाई। यह अलग बात है कि उसके प्रयासों को जन सहयोग नहीं मिला। पेपिन के बाद सेवरी (1698) और टामस न्यूकोमेन (1712) ने वोर्सेस्टर के इंजन में कई सुधार किये और अपने भाप इंजन बनाए। न्यूकामेन ने पहली बार अपने इंजन में पिस्टन का प्रयोग किया। पर जेम्सवाट (1774) ने जो भाप इंजन बनाया, उससे ही वाष्प इंजन की असली शुरुआत मानी जाती है। उसने अपने इंजन को दोहरी क्रिया वाला (DoubleActing) बनाया और 'क्रैंक और शैफ्ट' का प्रयोग करके इंजन को इस लायक बना दिया कि पिस्टन सीधी गति की जगह गोलाई में गति कर सके।

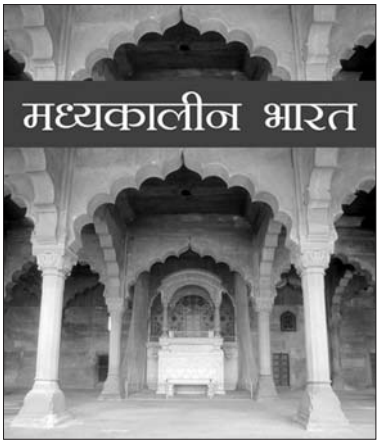

भारतीय वैज्ञानिक पुनर्जागरण की छाया माया से कोसों दूर था, यूरोप में नए-नए विज्ञानों का जो उदय हो रहा था, भारत को उसका संस्पर्श नहीं मिला क्योंकि भारतीय इतिहास का यह काल खंड कदाचित भारत के प्रतिकूल था और इसी नाते भारत वैज्ञानिक पुनर्जागरण में सम्मिलित न हो सका और आधुनिक विज्ञान के अग्रगण्य राष्ट्रों में पांक्तेय न हो सका। कारण स्पष्ट है। मुगलों के पश्चात भारत भूमि में पुर्तगालियों, डचों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों का पर्दापण हुआ जिन्होंने अपार जन-धन की ही क्षति नहीं पहुँचायी अपितु हमारी परंपराओं का भी ध्वंस किया, वैज्ञानिक ज्ञान की थातियों, विद्यापीठों को भी क्षत-विक्षत कर दिया और इन सभी का समेकित परिणाम यह रहा कि हमारा वैज्ञानिक अतीत धूल-धूसरित हो गया।

इंजन बनाए। न्यूकामेन ने पहली बार अपने इंजन में पिस्टन का प्रयोग किया। पर जेम्सवाट (1774) ने जो भाप इंजन बनाया, उससे ही वाष्प इंजन की असली शुरुआत मानी जाती है। उसने अपने इंजन को दोहरी क्रिया वाला (Double Acting) बनाया और 'क्रैंक और शैफ्ट' का प्रयोग करके इंजन को इस लायक बना दिया कि पिस्टन सीधी गति की जगह गोलाई में गति कर सके।

इंजन का वास्तविक प्रारूप, जिसकी मदद से रेलगाड़ियां अस्तित्व में आईं, बनाने में कग्नाट, मरडक, ट्रेविथिक आदि सफलता न प्राप्त कर सके पर इन सबके मिले-जुले प्रयासों से ही आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ और जार्ज स्टीफेंसन नामक एक अंग्रेज ने भाप चालित पहली रेलगाड़ी (1830) बनायी और रेलगाड़ी के जनक होने का श्रेय स्टीफेंसन को मिला। आगे चलकर जर्मनी के डॉ. निकोलस आटो ने (1876) पेट्रोल इंजन का आविष्कार किया और जर्मनी के ही रुडोल्फ डीजल ने (1893) डीजल इंजन का आविष्कार किया।

पर खेद का प्रकरण यह है कि भारतीय वैज्ञानिक पुनर्जागरण की छाया माया से कोसों दूर था, यूरोप में नए-नए विज्ञानों का जो उदय हो रहा था, भारत को उसका संस्पर्श नहीं मिला क्योंकि भारतीय इतिहास का यह काल खंड कदाचित भारत के प्रतिकूल था और इसी नाते भारत वैज्ञानिक पुनर्जागरण में सम्मिलित न हो सका और आधुनिक विज्ञान के अग्रगण्य राष्ट्रों में पांक्तेय न हो सका। कारण स्पष्ट है। मुगलों के पश्चात भारत भूमि में पुर्तगालियों, डचों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों का पर्दापण हुआ जिन्होंने अपार जन-धन की ही क्षति नहीं पहुँचायी अपितु हमारी परंपराओं का भी ध्वंस किया, वैज्ञानिक ज्ञान की थातियों, विद्यापीठों को भी क्षत-विक्षत कर दिया और इन सभी का समेकित परिणाम यह रहा कि हमारा वैज्ञानिक अतीत धूल-धूसरित हो गया।

फिर भी कुछेक विभूतियों ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान की दीप शिखा प्रज्ज्वलित रखी। भारतीय विज्ञान के इस अंध युग में सवाई राजा जय सिंह द्वितीय एक ऐसा नाम है जिसने भारतीय खगोल विज्ञान का फिर से श्रीगणेश किया, वेध की पुरातन परंपराओं की नई परिपाटी डाली। जय सिंह द्वितीय का जन्म 1686 ई. में हुआ था। इसी वर्ष न्यूटन का महान ग्रंथ 'प्रिंसीप्रिया' प्रकाशित हुआ। जय सिंह ने पाँच वेधशालाएँ स्थापित की और ग्रहों की सूक्ष्म से सूक्ष्म गति के निर्धारण के लिए वेध यंत्र (Astrolab) बनवाए। इस प्रकार हम देखते हैं कि जय सिंह भारतीय विज्ञान के मध्यकाल का एक ज्वाजल्यमान नक्षत्र हैं। उसकी खगोल विज्ञान के अति अटूट निष्ठा ने इस अंधयुग को प्रदीप्त किया।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मध्य काल में यद्यपि बहुत उल्लेखनीय कार्य तो नहीं हुए लेकिन कुछेक कार्य हुए हैं जो उल्लेख की मांग करते हैं। जिनकी चर्चा हम अगले अंकों में करेंगें।

sdprasad24oct@yahoo.com
❑❑❑

भू-पुरातत्त्वीय इतिहास की खोज में 'ऑप्टिकली स्टिमुलेटेड लुमनेसन्स' तकनीक

डॉ.कपूरमल जैन

भू-पुरातत्त्वीय खुदाई के दौरान मध्यप्रदेश के भोपाल, विदिशा, जबलपुर, धार आदि स्थानों के आसपास और नर्मदा व चम्बल घाटी के क्षेत्रों में एक के बाद एक कई पुरा-अवशेष मिलते जा रहे हैं जो हमारे समृद्ध भू-पुरातत्त्वीय इतिहास की ओर इशारा कर रहे हैं। भारतीय पुरातत्त्वविद वी.एस. वाकणकर द्वारा भीमबेटका में जिन 600 से अधिक गुफाओं की खोज की हैं, वे प्रागैतिहासिक काल यानि लगभग 13 हजार वर्ष पूर्व की हैं। इन गुफाओं में मिली पेंटिंगों में चीता, कुत्ता, हाथी, भेंस, छिपकली आदि के जो चित्र मिलते हैं, उनमें प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल हुआ है। आश्चर्य की बात है कि ये रंग आज भी फीके नहीं पड़े हैं। ये गुफाएँ 'विश्व धरोहर' में सम्मिलित हैं।

भू-पुरातत्त्वीय इतिहास अपने में कई रहस्यों को समाहित किये हुए है जिसे पुरातत्त्वीय खुदाई के दौरान प्राप्त जीवाश्मों और पुरा-अवशेषों के अध्ययन से प्राप्त किया जाता है। यह इतिहास बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें मानव सभ्यता के विकास को जानने और अपनी सांझी सांस्कृतिक धरोहर से रूबरू कराता है। वैज्ञानिकों ने इस अध्ययन से पृथ्वी पर जीवन-विकास के क्रमिक इतिहास को खोजा है एवं चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की है। इसने वर्तमान में पाकिस्तान के सिंध क्षेत्र में मोहन जोदड़ो (Mohenjo-daro) और हड़प्पा (Harappa) जैसे व्यवस्थित शहरों की खोज के माध्यम से भारत की सिंधु घाटी की प्राचीन सभ्यता (Indus Valley Civilization) एवं सांस्कृतिक धरोहर को प्रकाश में ला कर हमें गौरवांवित होने का अवसर दिया है। इसके बाद गुजरात में लोथल (Lothal) और धोलावीरा (Dholavira), राजस्थान में कालीबंगन (Kalibangan), और हरियाणा में रखीगढ़ी (Rakhigarhi) जैसे और प्राचीन शहरों के अस्तित्व में होने की जानकारी भी मिली। वर्तमान भू-पुरातत्त्वीय खुदाई के दौरान मध्यप्रदेश के भोपाल, विदिशा, जबलपुर, धार आदि स्थानों के आसपास और नर्मदा व चम्बल घाटी के क्षेत्रों में एक के बाद एक कई पुरा-अवशेष मिलते जा रहे हैं जो हमारे समृद्ध भू-पुरातत्त्वीय इतिहास की ओर इशारा कर रहे हैं। भारतीय पुरातत्त्वविद वी.एस. वाकणकर द्वारा भीमबेटका में जिन 600 से अधिक गुफाओं की खोज की हैं, वे प्रागैतिहासिक काल यानि लगभग 13 हजार वर्ष पूर्व की हैं। इन गुफाओं में मिली पेंटिंगों में चीता, कुत्ता, हाथी, भेंस, छिपकली आदि के जो चित्र मिलते हैं, उनमें प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल हुआ है। आश्चर्य की बात है कि ये रंग आज भी फीके नहीं पड़े हैं। ये गुफाएँ 'विश्व धरोहर' में सम्मिलित हैं।

आज हो रही जबर्दस्त तकनीकी प्रगति के कारण पुरातत्त्वीय और भूगर्भीय महत्त्व की कई ऐसी विश्वसनीय जानकारियाँ मिल रही हैं जो भारत की सभ्यता को विश्व में 'सर्वाधिक प्राचीनतम' सिद्ध करती हैं। इस तरह भारत के अतीत के बारे में अब तक प्रचलित रही धारणाओं और समझ में नाटकीय और प्रभावी परिवर्तन आ रहा है जिसे विश्व समुदाय द्वारा नजरअंदाज करना मुश्किल हो रहा है।

रेडियोधर्मी पदार्थ के एक किलोग्राम से आधा किलोग्राम होने में जो समय लगता है वही उसके एक ग्राम से आधा ग्राम होने में भी लगता है। वैज्ञानिक शब्दावली में इस अवधि को रेडियोधर्मी पदार्थों का "अर्द्ध-आयुकाल" (आधा होने में लगने वाला समय) कहते हैं। "रेडियोकार्बन" के लिए इसका मान 5700 वर्ष होता है। इस तरह पुरातत्त्वीय अवशेषों के नमूनों में रेडियोकार्बन की मात्रा को ज्ञात कर काल-गणना की जा सकती है।

पुरा-अवशेषों की प्राप्ति

पुरातत्त्वीय अवशेषों की खोज के लिए कुछ विशिष्ट संकेतों के आधार पर साइट (Site) का चयन कर अत्यंत सावधानीपूर्वक खुदाई की जाती है। साइट का पता लगाने के लिए विभिन्न तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। आज जी.आई.एस. (Geographic Information System) से 'पर्यावरणीय मॉडल' तैयार किये जाते हैं जिससे साइट के चयन में मदद मिलती है। जी.पी.आर. (Ground Penetrating Radar) की सहायता से भूमि में असंगति (Anomalies), भू-संरचना, पाये जाने वाले भू-पदार्थों की भिन्नता आदि के अध्ययन से साइट्स का पता लगाया जाता है। कीलों, गहनों, युद्धभूमि में प्रयोग में लाये गए हथियारों आदि जैसी वस्तुओं का पता लगाने के लिए धातुई संसूचकों (Metal Sensors) का इस्तेमाल भी किया जाता है। जलमग्न (Underwater) पुरा-अवशेषों का पता लगाने के लिए 'चुम्बकीय मापन तकनीक' (Magnetic measuring technique) और ध्वनि आधारित 'सोनार' (Sonar) विधि को प्रयुक्त किया जाता है।

काल निर्धारणके लिए 'कार्बन डेटिंग' तकनीक

चयनित साइट से जो पुरा-अवशेष प्राप्त होते हैं, उनका अध्ययन कर उनके अस्तित्व में आने के काल का पता लगाया जाता है। इसके लिए शोधकर्ता सामान्यतः 'कार्बन डेटिंग' तकनीक को अपनाते हैं। इस तकनीक में पुरा-अवशेषों में विद्यमान 'रेडियोकार्बन' (यह कार्बन का समस्थानिक है जिसकी परमाणु संहति 14 होती है) को मापा जाता है। अपने रेडियोधर्मी गुणों के कारण 'रेडियोकार्बन' इन अवशेषों में प्रकृति की स्वचालित घड़ी के रूप में कार्य करता है। इस घड़ी की जानकारी 1940 की दशक में सर्वप्रथम विलार्ड लीबी (Willard Libby) नामक एक वैज्ञानिक ने दी थी। लीबी ने बताया कि जब 'अंतरिक्ष-किरणें' वायुमण्डल में प्रवेश करती हैं तो वे वहाँ उपस्थित नाइट्रोजन के कुछ परमाणुओं को कार्बन के भारी समस्थानिक (रेडियोकार्बन) में बदल देती है। यह 'रेडियोकार्बन' कार्बन डायआक्साइड में परिवर्तित होकर पेड़-पौधों में 'प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis) क्रिया' के जरिये प्रवेश करते हैं जो भोजन के माध्यम से अन्य जीव-जन्तुओं में भी प्रवेश कर जाते हैं। इस तरह हर जैविक पदार्थ में प्राकृतिक 'कार्बन घड़ियाँ' स्थापित हो जाती हैं। प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि एक ग्राम ताजे जैव-पदार्थ (जैसे- हरी लकड़ी) को जलाने पर मिलने वाले कोयले में करीब 50 अरब रेडियो-कार्बन के परमाणु होते हैं। जीवाश्म में उपस्थित रेडियो-कार्बन से रेडियोधर्मी विकिरणों का उत्सर्जन होता रहता है जिससे समय के साथ-साथ इसकी मात्रा लगातार घटती जाती है। प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि रेडियोधर्मी पदार्थ के एक किलोग्राम से आधा किलोग्राम होने में जो समय लगता है वही उसके एक ग्राम से आधा ग्राम होने में भी लगता है। वैज्ञानिक शब्दावली में इस अवधि को रेडियोधर्मी पदार्थों का 'अर्द्ध-आयुकाल' (आधा होने में लगने वाला समय) कहते हैं। 'रेडियोकार्बन' के लिए इसका मान 5700 वर्ष होता है। इस तरह पुरातत्त्वीय अवशेषों के नमूनों में रेडियोकार्बन की मात्रा को ज्ञात कर काल-गणना की जा सकती है। यह ठीक उसी तरह है जिस तरह हम रेत-घड़ियों में रेत अथवा जल-घड़ियों में जल की बह रही मात्रा से बीते हुए समय की गणना कर लेते हैं।

'कार्बन डेटिंग' तकनीक की सीमाएँ

जब प्राप्त पुरातत्त्वीय अवशेषों में जैविक पदार्थ नहीं हो तब 'कार्बन डेटिंग' तकनीक काम नहीं आती है। ऐसे में प्रकृति में मिलने वाली अन्य घड़ियों पर ध्यान दिया जाता है। इनमें रेडियोधर्मी थोरियम, एक्टीनियम इत्यादि से बनने वाली घड़ियाँ प्रमुख हैं। प्रकृति की इन घड़ियों से विश्व की प्राचीनतम चट्टान की आयु 300 करोड़ वर्ष के लगभग मिली जबकि हिमालय की आयु मात्र 15 से 20 करोड़ वर्ष ही प्राप्त हुई। इससे पता चलता है कि पृथ्वी के अस्तित्व में आने के बहुत बाद में हिमालय पर्वत अस्तित्व में आया। यह भूगर्भीय गतिविधियों और समय-समय पर धरती पर होते रहने वाले 'आकृतिक परिवर्तनों' (Morphological changes) की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

रेडियोधर्मिता पर आधारित तकनीकों के अलावा अन्य विश्वसनीय तकनीक को खोजने के लिए वैज्ञानिकों का ध्यान भौतिकी के क्षेत्र में हो

रहे अनुसंधानों पर गया। इसका संबंध पुरा-अवशेषों में कैद 'प्रकाश' से है। यह 'प्रकाश' बालुई पत्थर या अन्य पुरात्त्वीय महत्त्व की चट्टानों में बिखरे रेडियोधर्मी पदार्थों में उपस्थित 'क्वार्ट्ज़' (Quartz) या 'फेल्ड स्पार' (Feld spar) के क्रिस्टल कणों में ट्रेप रहता है। इस 'प्रकाश' का अध्ययन कर यह जाना जा सकता है कि उसपर आखिरी बार प्रकाश कब पड़ा था। इससे काल गणना की जा सकती है। आईये! इसे थोड़ा विस्तार से समझते हैं।

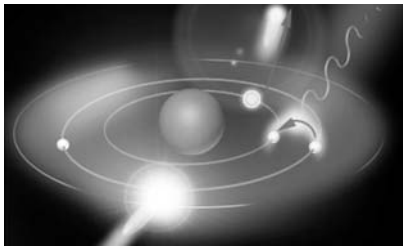

भौतिकी ने दिखाई राह

सन 1898 में 'इलेक्ट्रॉन' की खोज के बाद परमाणु की 'इलेक्ट्रॉनिक संरचना' की जानकारी मिली। यह स्पष्ट हुआ कि परमाणु में इलेक्ट्रॉन अलग-अलग असतत ऊर्जा अवस्थाओं (Descrete energy states) में अवस्थित होते हैं तथा इनमें चक्रिय (spin) गति होती है। लेकिन एक अवस्था में कितने इलेक्ट्रॉन हो सकते हैं, इसकी जानकारी 'पॉली के अपवर्जन नियम' की खोज के बाद मिली जिसके अनुसार एक अवस्था में अधिकतम दो इलेक्ट्रॉन ही रह सकते हैं, एक 'दक्षिणवर्तीय' (Clockwise) और दूसरा 'वामवर्तीय' (Anticlockwise) चक्रिय गति वाला। परमाणु की संरचना स्पष्ट होने के बाद वैज्ञानिकों ने अणु तथा ठोस की 'इलेक्ट्रॉनिक संरचना' को समझने की दिशा में कदम उठाये। इस समय तक सूक्ष्म यानि क्वांटम दुनिया को समझने के लिये गणितीय औजार (Mathematical tool) के रूप में 'क्वांटम यांत्रिकी' (Quantum Mechanics) जन्म ले चुकी थी। यह यांत्रिकी इस दिशा में आगे बढ़ रहे वैज्ञानिकों के लिए बहुत मददगार साबित हुई। द्वि तथा बहु परमाणवीय (di and poly atomic) अणु 'घूर्णन' (Rotation) तथा 'कम्पन' (Vibration) करने में भी सक्षम होते हैं। अतः इनमें प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा अवस्था के साथ घूर्णन तथा कम्पन गति के लिये भी पृथक से ऊर्जा अवस्थाएं संबद्ध होती हैं। इससे अणुओं की इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा अवस्थाएं 'ऊर्जा बैण्ड' (Energy bands) बन जाती हैं। इसकी जानकारी भौतिकी के सुप्रसिद्ध 'रमन प्रभाव' के अध्ययन से मिलती है। 'रमन प्रभाव' अणुओं द्वारा आपतित प्रकाश के प्रकीर्णन से जुड़ा हुआ है। इस अध्ययन के दौरान मिलने वाला 'स्पेक्ट्रम' वास्तव में अणुओं का 'फिंगर-प्रिंट' होता है। इस तरह यह प्रभाव पुरातत्त्वीय खोजों के दौरान मिलने वाले 'पिगमेंट' (वर्णक) आदि के अध्ययन में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है।

कुचालकों के आदर्श या परफेक्ट 'क्रिस्टल' (Crystal) की वैलेंस बैण्ड इलेक्ट्रॉनों से भरी रहती है जबकि चालक बैण्ड पूर्णतः खाली रहती है। लेकिन उपयुक्त प्रकाशीय ऊर्जा के फोटॉन से इलेक्ट्रॉनों को वैलेंस बैण्ड से चालक बैण्ड में पहुँचाया जा सकता है, जहाँ वे मुक्त अवस्था में आ जाते हैं और घूमने के लिए स्वतंत्र होते हैं। ऐसा होने पर वैलेंस बैण्ड में इलेक्ट्रॉनों की कमी हो जाती है जिन्हें 'विवर' (Hole) कहते हैं। 'विवर' यानि 'होल' धनात्मक आवेश की तरह व्यवहार करते हैं जो मुक्त इलेक्ट्रॉनों को अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखते हैं।

ठोस का अध्ययन करते हुए वैज्ञानिकों ने देखा कि 'क्रिस्टलीय संरचना' में विभिन्न परमाणु 'लेटिस' में सममित (Symmetric) तरीके से जमे रहते हैं। इससे क्रिस्टल की 'इलेक्ट्रॉनिक संरचना' अलग तरीके से व्यवहार करती है। ठोस क्रिस्टलों के लेटिस में कई-कई परमाणुओं की उपस्थिति के कारण स्वाभाविक ही इलेक्ट्रॉनों की ऊर्जा-अवस्थाएं 'ऊर्जा-बैण्ड' का रूप धारण कर लेती हैं। इन्हें समझने के लिए वैज्ञानिकों ने 'क्वांटम यांत्रिकी' (Quantum Mechanics) का अनुप्रयोग किया और देखा कि इनमें 'नाभिक' (Nucleus) से बंधे इलेक्ट्रानों के लिए 'वैलेंस बैण्ड' (Valance band) तथा मुक्त इलेक्ट्रॉनों के लिए 'कंडक्शन अथवा चालक बैण्ड' (Conduction band) होती हैं। 'वैलेंस बैण्ड' तथा 'कंडक्शन बैण्ड' के बीच एक गैप (या अंतराल) होता है जिसे 'ऊर्जा बैण्ड गैप' (Energy band gap) या सिर्फ 'बैण्ड गैप' कहते हैं। यह गैप ही ठोस पदार्थों के वर्गीकरण का आधार बनती है। कुचालकों में यह गैप बहुत अधिक होती है जबकि चालकों में यह अनुपस्थित रहती है।

कुचालकों के आदर्श या परफेक्ट 'क्रिस्टल' (ब्तलेजंस) की वैलेंस बैण्ड इलेक्ट्रॉनों से भरी रहती है जबकि चालक बैण्ड पूर्णतः खाली रहती है। लेकिन उपयुक्त प्रकाशीय ऊर्जा (ऊर्जा बैण्ड गैप से अधिक)के फोटॉन से इलेक्ट्रॉनों को वैलेंस बैण्ड से चालक बैण्ड में पहुँचाया जा सकता है, जहाँ वे मुक्त अवस्था में आ जाते हैं और घूमने के लिए स्वतंत्र होते हैं। ऐसा होने पर वैलेंस बैण्ड में इलेक्ट्रॉनों की कमी हो जाती है जिन्हें 'विवर' (Hole) कहते हैं। 'विवर' यानि 'होल' धनात्मक आवेश की तरह व्यवहार करते हैं जो मुक्त इलेक्ट्रॉनों को अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखते हैं। चालक बैण्ड के इलेक्ट्रॉन मुक्त अवस्था में तब तक घूमते रहते हैं जब तक कि वे वेलेंस बैण्ड में स्थित किसी 'विवर' में गिर कर 'प्रकाश' के रूप में ऊर्जा को उत्सर्जित नहीं कर देते। लेकिन प्रकृति में मिलने वाले क्रिस्टल 'आदर्श या परफेक्ट' क्रिस्टल नहीं होते। इनमें कई 'दोष' (डिफेक्ट्स) होते हैं। ये 'डिफेक्ट' ऊर्जा-गैप (अंतराल) में कई ऐसी अवस्थाओं को पैदा

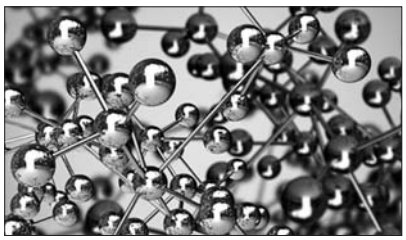

लम्बी कालावधि में इन क्रिस्टल ग्रेन्स में क्वांटम स्तर पर मापन योग्य परिवर्तन पैदा हो जाते हैं। क्रिस्टल में अवस्थित इन ट्रैपों में इलेक्ट्रॉनों की संख्या उस ऊर्जा के समानुपातिक होती है जो क्रिस्टल के आसपास रेडियोधर्मी वातावरण के द्वारा उत्सर्जित की जाती है तथा क्रिस्टल के द्वारा अवशोषित की जाती है जो इन इलेक्ट्रॉनों के ट्रैप हो जाने के कारण बची रह जाती है। इसतरह काल–गणना संभव हो जाती है। इस तकनीक में 'डेटिंग' के लिये वे 'ट्रैप' उपयोगी होते हैं जो 'क्रिस्टल–लैटिस' में अधिक गहराई में अवस्थित होते हैं क्योंकि उनका ऊष्मीय जीवनकाल (Thermal lifetime) अधिक होता है।

कर देते हैं जिनमें इलेक्ट्रॉन जा कर ठहर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, ये अवस्थाएं इलेक्ट्रॉनों के लिये 'ट्रैप' साबित होती हैं। अध्ययन से पता चला कि ये ट्रैप 'शैलो' (उथले) और 'डिप' (गहरे) प्रकार के होते हैं। 'शैलो ट्रैप' में ट्रैप इलेक्ट्रॉन को मुक्त करने के लिये कम (ऊष्मीय परास में अवस्थित) जबकि 'डिप ट्रैप' से मुक्त करने के लिये अधिक (प्रकाशीय परास में अवस्थित) ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ट्रैप का अध्ययन करने के लिए 'थर्मोलुमिनेसन्स' (ताप संदीप्ति) तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है। इस अध्ययन में ट्रैप्ड इलेक्ट्रानों वाले नमूने को विभिन्न निश्चित तापों पर गरम करते हुए उत्सर्जित होने वाले प्रकाश को स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से मापा जाता है। अलग-अलग ताप पर उत्सर्जित प्रकाश की तीव्रता अलग-अलग होती है। इसके बाद ताप और उत्सर्जित प्रकाश की तीव्रता के बीच ग्राफ खींच कर दीप्ति वक्र ('ग्लो कर्व') प्राप्त कर ली जाती है। जिस ताप पर 'ग्लो कर्व' में सबसे अधिक प्रकाश की तीव्रता यानि पीक (शिखर मान) मिलती है, उसका संबंध प्रायोगिक नमूने में विद्यमान 'ट्रैप गहराई' (Trap depth) से होता है। 'ग्लो कर्व' में 'शिखर ताप' (Peak Temperature) जितना अधिक होता है, उतनी ही अधिक प्रायोगिक क्रिस्टल में 'ट्रैप' की गहराई (डेप्थ) होती है।

'नयी घड़ी' की खोज

यह भौतिकी के अध्ययन के दौरान पाया गया ऐसा ज्ञान साबित हुआ जिसने भूगर्भ विज्ञान और पुरातत्त्वीय इतिहास के अध्ययन और आयु-काल का निर्धारण करने के लिए एक सर्वथा नया रास्ता सुझा दिया। सच कहा जाये तो भौतिकी में हुई इन खोजों ने भू-वैज्ञानिकों और पुरातत्त्वीय वैज्ञानिकों को अब तक की प्रयुक्त प्राकृतिक घड़ियों के अलग एक सर्वथा 'नयी घड़ी' को खोजने का आधार उपलब्ध करा दिया।

भूगर्भीय और पुरा-तत्त्वीय शोध में 'तापित पदार्थ', बालुक डिपाजिट (जिनमें और सिरामिक और मिट्टी टूटे हुए नहर-नालों जैसे सांस्कृतिक महत्त्व के स्थान शामिल हैं) तथा मिट्टी से निर्मित पुरातत्त्वीय महत्त्व के अवशेष काफी महत्त्वपूर्ण साबित होते हैं। इनमें कई जानकारियाँ 'कोडित' होती हैं। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि इन पुरा-तत्त्वीय नमूनों में 'ट्रेस' (लेश) घटक के रूप में रेडियोधर्मी पोटेशियम, यूरेनियम, थोरियम, रूबिडियम आदि पाये जाते हैं जो लगातार रेडियोधर्मी विकिरणों को उत्सर्जित करते रहते हैं। अब अगर इन नमूनों में 'क्वार्ट्ज' और 'फेल्डस्पार' के क्रिस्टल उपस्थित है तो वे इन विकिरणों से प्रभावित होते हैं। विकिरणों के कारण इनकी वैलेंस बैण्ड में उपस्थित कुछ 'बंध-इलेक्ट्रॉन' 'मुक्त' होने लगते हैं और क्रिस्टल ग्रेन में उपस्थित इलेक्ट्रॉन ट्रेप्स में जा कर कैद हो जाते हैं। चूँकि पुरा-तत्त्वीय नमूनों में अवस्थित होने के कारण इन तक बाह्य ऊर्जा नहीं पहुँच पाती है अतः ये वहीं बने रहते हैं। फिर धीरे-धीरे समय के साथ इनकी संख्या बढ़ने लगती है। इस तरह लम्बी कालावधि में इन क्रिस्टल ग्रेन्स में क्वांटम स्तर पर मापन योग्य परिवर्तन पैदा हो जाते हैं। क्रिस्टल में अवस्थित इन ट्रैपों में इलेक्ट्रॉनों की संख्या उस ऊर्जा के समानुपातिक होती है जो क्रिस्टल के आसपास रेडियोधर्मी वातावरण के द्वारा उत्सर्जित की जाती है तथा क्रिस्टल के द्वारा अवशोषित की जाती है जो इन इलेक्ट्रॉनों के ट्रैप हो जाने के कारण बची रह जाती है। इसतरह काल-गणना संभव हो जाती है। इस तकनीक में 'डेटिंग' के लिये वे 'ट्रैप' उपयोगी होते हैं जो 'क्रिस्टल-लैटिस' में अधिक गहराई में अवस्थित होते हैं क्योंकि उनका ऊष्मीय जीवनकाल (Thermal lifetime) अधिक होता है।

लुमनेसन्स डेटिंग तकनीक और नमूनों का संग्रहण

पुरातत्त्वीय एवं भूगर्भीय महत्त्व के नमूनों में उपस्थित 'क्रिस्टल-लैटिस' में आये परिवर्तनों को मापने के लिये इलेक्ट्रॉनों को 'ट्रैप' से मुक्त कराना तथा फिर इनके 'विवर' में गिरने के दौरान उत्पन्न होने वाले प्रकाश की तीव्रता को अत्यंत सुग्राही उपकरणों की सहायता से मापना पड़ता है। इन्हें मापने के लिए प्रयोगशालाओं में जिन तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है उन्हें 'लुमनेसन्स डेटिंग' (Lumunescence dating) तकनीक कहा जाता है। चूँकि लुमनेसन्स डेटिंग तकनीक में 'क्वार्ट्ज और फेल्डस्पार' के अशेष भाजक (सपुनवज) तथा एकल (सिंगल) ग्रेन प्रयुक्त होते हैं, अतः शोधकर्ताओं को नमूनों के संग्रहण में स्थानीय साइट फार्मेशन (aSite formation) की विधि की समझ

तथा 'लुमनेसन्स डेटिंग' तकनीक के सिद्धांत को जानने की आवश्यकता होती है। इसके बाद शोधकर्ताओं को सेम्पल में से इन 'क्रिस्टल ग्रेन' को प्राप्त करना होता है। प्रयोग के लिए जिन 'ग्रेन' को चुना जाता है, वे 'फाइन' से 'मिडियम' साइज (90 से 250 माइक्रोमीटर) के 'क्रिस्टल कण' तथा 'फाइन सिल्ट' (4 से 11 माइक्रोमीटर) के रूप में होते हैं। चूँकि इन्हें भौतिक विधियों से अलग नहीं किया जा सकता है, अतः इन्हें प्राप्त करने के लिए विशिष्ट तकनीकों को अपनाना पड़ता है। इसीलिए इस तकनीक का प्रयोग करने और सही-सही काल निर्धारण के लिये पुरातत्त्वीय अवशेषों के नमूनों (सेम्पल) का संग्रहण (कलेक्शन) और उनके संग्रहण की विधि बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। हालांकि 'लुमनेसन्स डेटिंग' तकनीकें उच्च-स्तरीय तकनीकें हैं फिर भी इनसे काल निर्धारण में त्रुटियों की भी संभावना रहती है। इसका कारण नमूनों की गुणवत्ता है।

1965 में शेल्को प्लायस और मोरोझोव (Shelkoplyas and Morozov) ने प्रथम बार उन पदार्थों को चुना जिन्हें गरम कर तैयार नहीं किया गया था। इसके बाद पिछली सदी की सत्तर और अस्सी की दशकों में लाइट सेंसीटिव ट्रेप्स (Light sensitive traps) को आधार बना कर टेरेस्ट्रियल (पार्थिव) और मैरिन (समुद्रक) भूगर्भिय सेडिमेंट्स का चयन किया और काल निर्धारण के लिये थर्मोलुमिनेसन्स तकनीक प्रयुक्त होती रही।

प्रयोग के लिए नमूनों का पुरातत्त्वीय अवशेषों में प्रवेश के पूर्व पूरी तरह से 'ब्लिच' होना जरूरी है। 'ब्लिच' होने से तात्पर्य यह है कि उनमें पहले से ही कोई इलेक्ट्रॉन ट्रैप न हो। 'सौरप्रकाश' (Sunlight) की उपस्थिति में ये 'ब्लिच' हो जाते हैं। अब हो सकता है कि जिस नमूने को प्रयोग हेतु चुना गया है, वह चट्टान या पुरातत्त्वीय अवशेष में प्रवेश के पूर्व पूरी तरह से 'ब्लिच' न हो। ऐसा स्थिति में काल का 'अधि-आकलन' (Over Estimation) हो सकता है। एक और संभावना है। प्रयोग हेतु चयनित सेम्पल चट्टान या पुरातत्त्वीय अवशेष में इतनी अधिक कालावधि बीता दे कि आज से बहुत पहले ही सारे ट्रैप भर जायें जिससे इलेक्ट्रॉनों को ट्रैप करने के लिए कोई अवस्था ही क्रिस्टल में न बचे। ऐसी स्थिति में काल के 'अव-आकलन' (Under estimation) की संभावना रहती है।

लुमनेसन्स डेटिंग तकनीक अपनाने का सुझाव सन् 1953 में वैज्ञानिक फेरंगटॅन डेनियल्स (Farrington Daniels), चार्ल्स बॉयड (Charles A. Boyd) और डोनाल्ड एफ. सौंडर्स (Donald F. Saunders) ने दिया। लेकिन इस विचार के प्रायोगिक सत्यापन हेतु प्रयोगों की शृंखला एन. ग्रोगलर और उनके साथियों (N.Grögler et al.) ने सन् 1960 से की। इन वैज्ञानिकों ने पॉटरी (मिट्टी के बर्तन), ईंटों, टाइल्स आदि में प्रयुक्त पदार्थों के 'थर्मोलुमिनेसन्स' अध्ययन से सफलतापूर्वक काल-निर्धारण कर एक नयी राह दिखा दी। इसके बाद 'थर्मोलुमिनेसन्स' शोध और अध्ययन के लिये पॉटरी (pottery) और सिरामिक्स (ceramics), दग्ध (बर्न्ट) फ्लिंट (burnt flints), बेक्ड हर्थ (आग में पकी हुई भट्टी) (baked hearth) के अवशेष, ओवन में प्रयुक्त पत्थर (oven stones) और आग में पकी हुई अन्य वस्तुएँ चुनी गई।

इसके बाद 1965 में शेल्को प्लायस और मोरोझोव (Shelkoplyas and Morozov) ने प्रथम बार उन पदार्थों को चुना जिन्हें गरम कर तैयार नहीं किया गया था। इसके बाद पिछली सदी की सत्तर और अस्सी की दशकों में लाइट सेंसीटिव ट्रेप्स (Light sensitive traps) को आधार बना कर टेरेस्ट्रियल (पार्थिव) और मैरिन (समुद्रक) भूगर्भीय सेडिमेंट्स का चयन किया और काल निर्धारण के लिये थर्मोलुमिनेसन्स तकनीक प्रयुक्त होती रही।

'ऑप्टीकली स्टिमुलेटेड लुमिनेसंस' तकनीक का विकास

इस बीच सन् 1963 में एटकन और साथियों (Aitken et al.) के संज्ञान में थर्मोलुमिनेसंट ट्रेप्स के संबंध में एक बात आई। उन्होंने पाया कि केल्साइट क्रिस्टल में ये सौरप्रकाश की उपस्थिति में अथवा गरम करने पर 'ब्लिच' हो जाते हैं। अतः सही-सही काल निर्धारण में समस्या आई। लेकिन वैज्ञानिकों का इस तकनीक पर बहुत गहरा विश्वास जम चुका था। अतः अब तक मिली सफलता ने वैज्ञानिकों को प्रेरित किया ताकि प्रकाश-आधारित काल निर्धारण तकनीक में नये आयाम जोड़े जा सकें। इसी के परिणाम-स्वरूप सन् 1984 में डेविड हंटले और उनके साथियों (David Huntley et.al.) ने 'प्रकाशतः उद्दीपन ज्योतिर्मयता' यानि 'ऑप्टीकली स्टिमुलेटेड लुमिनेसन्स (Optically Stimulated Luminescence)' यानि 'ओ.एस.एल.' तकनीक को विकसित करने की दिशा में कार्य किया और सफलता पाई। इस तकनीक में क्रिस्टल को उच्च तरंगदैर्ध्य के प्रकाश (नीले, हरे या नियर इंफ्रारेड) से उद्दीपित कर प्राप्त होने वाले निम्न तरंगदैर्ध्य के प्रकाश (बैंगनी) को माप लिया जाता है। इस तकनीक में उद्दीपन (Stimulation) और संसूचन (डिटेक्टशन) के विभिन्न मोड प्रचलन में हैं। इनमें 'कंटीन्यूअस वेव (संतत तरंग) ओ.एस.एल.' सबसे सरल और प्रचलन में लायी जाने वाली तकनीक है। इसमें उद्दीपन के लिए नियत तीव्रता के प्रकाश

गहराई में अवस्थित ट्रैप ज्यादा स्थिर होते हैं। अतः इनके द्वारा किया जाने वाला काल–निर्धारण अधिक विश्वसनीय होता है। इसके लिये 'फोटो ट्रान्स्फर्ड (फोटो अंन्तरण) ओ.एस.एल.' और कूल्ड (शीतल) ओ. एस.एल. तकनीकों को प्रयुक्त किया जाता है। इन तकनीकों में पहले नमूने में से 'शैलो ट्रैप' में अवस्थित इलेक्ट्रॉनों को गरम कर खाली कर लिया जाता है तथा फिर उचित ऊर्जा के फोटॉन से उद्यापित कर डीप ट्रैप (अधस्थ तल) से 'लुमनेसन्स सिगनल' प्राप्त किया जाता है।

स्रोत का इस्तेमाल किया जाता है। इसके समान ही एक अन्य तकनीक लिनियरली माडुलेटेड (रेखिक माडुलक) ओ.एस.एल. है जिसमें उद्दीपन के लिए बढ़ते रेखीय क्रम वाले तीव्रता के प्रकाश स्रोत का उपयोग किया जाता है। एक अन्य तकनीक में उद्दीपन (स्टीमुलेशन) के पश्चात ओ.एस.एल. सिग्नल को मापा जाता है। एक तकनीक ऐसी भी है जिसमें उद्दीपन के लिए 'पल्स' (स्पंदन) का इस्तेमाल किया जाता है। 'पल्स' को प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त स्रोत को एक निश्चित अंतराल पर बंद व चालू किया जाता है तथा 'स्पंदनों' की बीच की अवधि में ओ.एस.एल. सिग्नल को लगातार मापते हुए जोड़ा जाता है जब तक कि एक संतुलन (इक्विलिब्रियम) मान नहीं मिल जाता।

गहराई में अवस्थित ट्रैप ज्यादा स्थिर होते हैं। अतः इनके द्वारा किया जाने वाला काल-निर्धारण अधिक विश्वसनीय होता है। इसके लिये 'फोटो ट्रान्स्फर्ड (फोटो अंन्तरण) ओ.एस. एल.' और कूल्ड (शीतल) ओ.एस.एल. तकनीकों को प्रयुक्त किया जाता है। इन तकनीकों में पहले नमूने में से 'शैलो ट्रैप' में अवस्थित इलेक्ट्रॉनों को गरम कर खाली कर लिया जाता है तथा फिर उचित ऊर्जा के फोटॉन से उद्यापित कर डीप ट्रैप (अधस्थ तल) से 'लुमनेसन्स सिगनल' प्राप्त किया जाता है। 'फोटो ट्रांस्फर्ड ओ.एस.एल.' और 'कूल्ड ओ.एस.एल.' तकनीकों में कोई विशेष अंतर नहीं है। कूल्ड ओ.एस.एल. तकनीक में नमूने को 'द्रव नाइट्रोजन' ताप से कमरे के ताप तक लाया जाता है ताकि 'शैलो ट्रैप' में अवस्थित अधिकतम इलेक्ट्रॉनों को मुक्त किया जा सके जिससे नमूने में काल-गणना के लिये 'डीप ट्रैप' से ही सिग्नल मिल सके। उपर्युक्त उल्लेखित तकनीकों के अनुप्रयोगों से नमूने द्वारा अवशोषित विकिरण की कुल मात्रा माप लेने के पश्चात अवशेषों के नमूने में उपस्थित रेडियोधर्मी तत्वों से होने वाले उत्सर्जन को मापने की भी जरूरत पड़ती है। इसे माप कर 'विकिरण डोज़' की दर ज्ञात कर ली जाती है। इन दोनों मान से प्रायोगिक पुरा-अवशेषों का आयु-काल ज्ञात कर लिया जाता है।

भविष्य की दिशा

आयोन्निस लिरिट्झिस (Ioannis Liritzis) ने ग्रेनाइट (granite), बेसाल्ट (basalt) और बलुआ पत्थर (sandstone) से बनी सतहों आदि के अध्ययन से प्राचीन भवनों आदि के काल निर्धारण हेतु इस विधि से सफलता प्राप्त की। इसके अलावा भूगर्भीय महत्त्व की यथा, एओलीअन (प्राचीन ग्रीस के बाशिंदों संबंधी जानकारी), तटीय और नदीय, समुद्रीय, सुनामीजेनिक (वे भूकम्प जो सुनामी को जन्म देते हैं), ग्लेशिओजेनिक (जो हिम नदियों या ग्लेशर को जन्म देते हैं), स्लोप डिपॉज़िट (ढलान जमा) आदि के संबंध में कई जानकारियाँ मिली हैं। इस तकनीक से ज्वालामुखीय स्थानों से प्राप्त पदार्थों का अध्ययन कर पृथ्वी के अतीत तथा वर्तमान संबंधी जानकारियों को भी वैज्ञानिकों ने प्राप्त किया है। इन जानकारियों से जो 'पैटर्न' मिले हैं उनसे भविष्य में होने वाले परिवर्तनों के बारे में भी जानना संभव हो पा रहा है। अब समूचे पृथ्वी तंत्र की गतिकी की बेहतर समझ विकसित हो रही है जिससे हमें पृथ्वी के अतीत, वर्तमान और भविष्य की कार्य-पद्धति के बारे में जानकारी मिल रही है। इसतरह यह अध्ययन प्राकृतिक और मानवीय कारणों से होने वाले पृथ्वी और उसकी जलवायु में परिवर्तन जैसे विषयों पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

आज 'ओ.एस.एल.' एक अनिवार्य 'टूल' के रूप में सामने आ रहा है जिससे मानव-जन्य गतिविधियों के कारण पृथ्वी पर समय-समय पर जो परिवर्तन हुए हैं उन्हें बारीकी से समझना संभव हो पा रहा है। आश्वस है वर्तमान संदर्भ में यह अध्ययन समूचे विश्व को चिंतित कर रहे 'जलवायु परिवर्तन' के संकट से निपटने के लिए कार्य-योजना बनाने में वैज्ञानिकों की मदद करेगा। प्रसन्नता की बात है कि 'मध्यप्रदेश विज्ञान एवं औद्योगिक परिषद' इस क्षेत्र में रूचि रखने वाले शोधकर्ताओं के लिए यह आधुनिक सुविधा उपलब्ध कराने जा रहा है।

kapurmaljain@gmail.com

❑❑❑

भविष्य जैविक खेती का है

दिनेश मणि

कीटनाशकों का इतनी लापरवाही से प्रयोग किया गया है कि वास्तविक हानिकारक कीटों के अतिरिक्त अन्य जीवों को भी नष्ट कर दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि कीटों का जैविक नियंत्रण प्रभावित हुआ और कीटों में रासायनिक कीटनाशकों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न हो गया। कीट पुनः बड़ी संख्या में उत्पन्न हुए और द्वितीयक हानिकारक कीट उत्पन्न हो गए और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई।

फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के जिए जहाँ एक ओर हमने उन्नत किस्मों और कृषि के आधुनिक तरीकों को अपनाया वहीं दूसरी ओर रासायनिक उर्वरकों एवं नाशीजीव रसायनों का भी अत्यधिक इस्तेमाल किया क्योंकि फसलों में नाशीजीवों से होने वाली हानि भी बहुत अधिक है। इन रसायनों के अत्यधिक इस्तेमाल के कारण गंभीर पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। कीटों में कीटनाशी रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा होने से बहुत से कीट रसायन की साधारण तीव्रता से मरते नहीं हैं अतः किसान अधिक से अधिक रसायन की तीव्रता का उपयोग करते हैं। वर्तमान में अनेक कीटों की प्रजातियों में विभिन्न रासायनिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो गई है। अधिक तीव्रता के रसायन उपयोग करने से अन्य दूसरे जीवों एवं लाभकारी कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। परजीवी एवं परभक्षी कीट हानिकारक कीटों पर अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं तथा हानिकारक कीटों की रोकथाम करने में कारगर सिद्ध हुए हैं, लेकिन कीटनाशी रसायनों की अधिक मात्रा इस्तेमाल करने से उन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

रशेल कार्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'साइलेण्ट स्प्रिंग' में कीटनाशकों के बिना सोचे-समझे अंधा-धुंध प्रयोग के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने बताया कि कीटनाशकों का इतनी लापरवाही से प्रयोग किया गया है कि वास्तविक हानिकारक कीटों के अतिरिक्त अन्य जीवों को भी नष्ट कर दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि कीटों का जैविक नियंत्रण प्रभावित हुआ और कीटों में रासायनिक कीटनाशकों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न हो गया। कीट पुनः बड़ी संख्या में उत्पन्न हुए और द्वितीयक हानिकारक कीट उत्पन्न हो गए और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई।

मृदा, पानी और संसाधनों की उपलब्धता से जुड़े पर्यावरणीय एवं परिस्थितिकीय प्रभाव के कारण आधुनिक औद्योगिक कृषि प्रणालियाँ अब इस दुनिया की भूख शांत नहीं कर पायेंगी। सन 2009 के खाद्य संकट ने वैश्विक खाद्य प्रणाली में परिवर्तन की ओर इशारा कर किया है। सन् 1950 के दशक में प्रचलन में आई आधुनिक कृषि संसाधनों एवं जीवाश्म ईंधन पर पूर्णतया निर्भर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने वाली और अत्यधिक उत्पादन के लक्ष्य पर आधारित हैं। यह नीति बदलनी होगी। हम चुनौतियों की शृंखला का सामना कर रहे हैं। संसाधनों की कमी, पानी की बढ़ती कमी और भूमि के क्षरण में हमें इस बात पर पुनर्विचार हेतु बाध्य कर दिया है कि भविष्य की पीढ़ी के मद्देनजर हम किस प्रकार अपने संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ उपयोग कर सकते हैं।

विश्व के अनेक विकसित राष्ट्रों में कार्बनिक खेती को एक नया आयाम मिला है। पर्यावरण प्रदूषण से त्रस्त एवं भयभीत विकसित राष्ट्रों के नागरिकों द्वारा ऐसे उत्पादों के उपयोग पर बल दिया जा रहा है जो कार्बनिक खेती द्वारा उत्पन्न किए गए हैं। ऐसे उत्पादों को वे कार्बनिक खाद्य कहते हैं। यह किसी अंधविश्वास का सूचक नहीं है अपितु उर्वरकों तथा कीटनाशियों के अत्यधिक प्रयोग से जिस तरह खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता में गिरावट आई है, जिसके कारण समाज में नाना प्रकार के रोगों का प्रसार हुआ है, उससे प्रबुद्ध नागरिक आतंकित हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

दुनिया के कई देशों के उपभोक्ता अब जैव (आर्गेनिक) खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता दे रहे हैं। हमारे देश में अन्य कई देशों की तुलना में अभी भी बहुत कम कीटनाशकों का इस्तेमाल हो रहा है। ऐसे में भारत के कृषि उत्पादों को जैव खाद्य पदार्थों के रूप में लोकप्रिय बनाया जा सकता है। इससे भारत बाकी दुनिया के लोगों के लिए महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। साथ ही जैविक खेती को बढ़ावा देने से कृषि उपादानों पर खर्चा कम हो सकेगा।

सर्वप्रथम 5 नवम्बर 1972 को फ्रांस में इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ आर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट शुरू हुआ। सम्प्रति विश्व के 100 देशों में 650 ऐसे संगठन है। जर्मनी में कुल बाजारू खाद्य का 3-5 प्रतिशत कार्बनिक या जैविक खेती से उत्पन्न किया जाता है, आस्ट्रेलिया में 10 प्रतिशत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल 1-2 प्रतिशत खाद्य जैविक खेती से उत्पन्न किया जाता है। जापान में 1970 से ही 'आर्गेनिक फार्मर्स' ने सहकारी समितियाँ बना ली थीं और 1991 तथा ऐसी 100 समितियाँ थीं। कोरिया में 1978 से जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा हैं चीन में 1990 में कृषि मंत्रालय ने 'हरित खाद्य' की योजना प्रारम्भ की। इस प्रकार सरकार ने इस खाद्य के लिए मानदण्ड निर्धारित कर दिए हैं जिसमें सीमित मात्रा में ही पेस्टीसाइडों का प्रयोग करना होता है। हमारे देश में भी 1996 में कार्बनिक कृषि में मानदण्ड निर्धारित करके कार्य प्रारंभ हुआ है, जिसके अन्तर्गत प्रमाणीकरण तथा विपणन कार्य चालू है।

विश्व के अनेक विकसित राष्ट्रों में कार्बनिक खेती को एक नया आयाम मिला है। पर्यावरण प्रदूषण से त्रस्त एवं भयभीत विकसित राष्ट्रों के नागरिकों द्वारा ऐसे उत्पादों के उपयोग पर बल दिया जा रहा है जो कार्बनिक खेती द्वारा उत्पन्न किए गए हैं। ऐसे उत्पादों को वे कार्बनिक खाद्य कहते हैं। यह किसी अंधविश्वास का सूचक नहीं है अपितु उर्वरकों तथा कीटनाशियों के अत्यधिक प्रयोग से जिस तरह खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता में गिरावट आई है, जिसके कारण समाज में नाना प्रकार के रोगों का प्रसार हुआ है, उससे प्रबुद्ध नागरिक आतंकित हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वस्तुतः रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग से फसलों में तमाम विषैले पदार्थ संचित हो रहे हैं। अतः जब इनसे प्राप्त उत्पादों का उपयोग मनुष्यों द्वारा या पशुओं द्वारा होगा तो ये विषैले पदार्थ उनके शरीर में संचित होंगे और उनमें तरह-तरह के रोग उत्पन्न होंगे।

इससे बचने के लिए फसलों को कीटाणुओं व जीवाणुओं का मुकाबला करने के लिए प्रतिरोधी और ज्यादा पोषक तत्वों से परिपूर्ण बनाया जा सकता है। जैविक खेती फसल प्रबंधन में ज्यादा लचीलापन उपलब्ध करा देती हैं। पारंपरिक कीटनाशकों व शाकनाशियों पर निर्भरता कम करती हैं, पैदावार बढ़ा देती है और उत्पादों के स्वच्छ व उच्चतर दर्जे का उत्पादन करती हैं। कम से कम आठ देश पहले ही जैविक फसलों को अपना चुके हैं। पिछले साल दुनिया भर में इन फसलों के तहत आने वाला क्षेत्रफल 2.78 करोड़ हैक्टेयर से भी ज्यादा था। जैव-प्रौद्योगिकी का व्यवसायीकरण करने वाला पहला देश चीन था। लेकिन जल्दी ही अमेरिका ने चीन को पीछे छोड़ दिया। अब जैविक फसलों के तहत आने वाले क्षेत्रफल का 74 प्रतिशत हिस्सा अमेरिका में है। महत्व के क्रम में अन्य देश हैं- अर्जेंटीना, कनाडा, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको, स्पेन, फ्रांस, और दक्षिण अफ्रीका। अब तक जो जैविक फसलें व्यावसायिक स्तर पर विकसित की जा चुकी है उनमें सोयाबीन, मक्का, कपास, रैपसीड और आलू शामिल हैं। इनमें से पहली दो फसलों का ही जैविक फसलों के तहत आने वाले कुल क्षेत्रफल में से 82 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा है। दुनिया भर में जैविक फसलों का कुल बाजार मूल्य लगभग 1.5 अरब डॉलर है और इसमें निरंतर वृद्धि ही हो रही है।

जैविक खेती वस्तुतः नए सिरे से नए मानदण्डों के अन्तर्गत कृषि की नवीन विधा को अपनाने का आह्वान है। विशेषतया सब्जी उत्पादों के बढ़ते निर्यात का दृष्टि से जैविक खेती महत्वपूर्ण है। सब्जियों के उत्पादन में न केवल अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग होता है अपितु, अनेक प्रकार के कीटनाशियों का प्रयोग आवश्यक है किन्तु अधिक कीटनाशियों के लगातार प्रयोग से कीटों में इन रसायनों के प्रति सहनशीलता या प्रतिरोधकता बढ़ती जा रही है। अधिक कीटनाशी कीटों को मारने में नहीं अपितु फसलों (विशेषकर सब्जियों) पर अपना

पर्याप्त अवशेष छोड़ने में योगदान करते हैं। ये अवशेष सब्जियों के द्वारा मनुष्यों के शरीर में पहुँचकर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। अतएव जैविक खेती के द्वारा इन उर्वरकों के प्रयोग को घटाना होगा और जैविक नियंत्रण द्वारा कीटों को नियंत्रित करना होगा। उदाहरणार्थ, टमाटर, भिण्डी में छेद करने वाले कीटों का नियंत्रण, ट्राइकोग्रेमा द्वारा, भिंडी, मिर्च तथा लोबिया के माहू कीट का नियंत्रण क्राइसोपेरला कोर्निया द्वारा सम्भव हैं। टमाटर में छेद करने वाले कीट के नियंत्रण हेतु एक विषाणु (एच.ए.एन.पी.वी.) बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इस तरह कीटनाशियों का प्रयोग धीरे-धीरे घटाया जा सकता है। वैसे जैविक खेती से अधिकांश खाद्यान्नों की गुणवत्ता में सुधार सम्भव है किन्तु सब्जियों की गुणवत्ता सुधारने के लिए नए-नए आयाम ढूँढ़े जा रहे हैं। उदाहरणार्थ टमाटर, गाजर और कद्दू (काशीफल) में बीटा कैरोटीन (विटामिन ए का स्रोत) भी मात्रा बढ़ाने वाले जनन-द्रव्य की खोज की जा चुकी है। इसी तरह मिर्च, टमाटर में ऐस्कर्बिक अम्ल (विटामिन सी) की मात्रा बढ़ाने वाला जनन-द्रव्य भी खोजा जा चुका है। सब्जियों में प्रोटीन की मात्रा तथा गुणवत्ता के सुधार की भी आवश्यकता है। जनन-द्रव्यों से पत्तीदार सब्जियों में आयरन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। सब्जियों में पाये जाने वाले कुछ विपरीत कारकों यथा- आलू में सोलेनीन, टमाटर में ट्रोमैटीन, पत्तीदार सब्जियों में ऑक्सैलेट की मात्रा कम करने की आवश्यकता है।

प्राकृतिक रूप से उपस्थित पौधों के रसायन कीटों के व्यवहार तथा कार्यिकी को प्रभावित करते हैं, इसलिए कीटों मे इन रसायनों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न होना आसान नहीं होता। पौधों से प्राप्त कीटनाशक बिना किसी को क्षति पहुँचाते आसानी से अपने अवयवों में टूट जाते हैं। कीटों की संख्या को बढ़ने से रोकने वाले सक्रिय रसायन (वानस्पतिक कीटनाशक) बहुत सारे पौधों में भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। ये पौध–उत्पाद वो द्वितीय उपावयव है जो कीटों की मौलिक, क्रियात्मक व जैव रासायनिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं एवं ये आसानी से क्षरित होते हैं।

वानस्पतिक कीटनाशी

वानस्पतिक कीट विष पौधे के सभी भागों जैसे- जड़, पत्ती, तना, फूल एवं बीजों से प्राप्त होते हैं, वर्तमान में समेकित कीट प्रबंधन में वानस्पतिक कीटविषों के प्रयोग पर विशेष बल दिया जा रहा है। इनमें तम्बाकू से प्राप्त निकोटीन, क्राइसेन्थमम में फूलों से प्राप्त पाइरेथ्रम, नीम से प्राप्त ऐजेडीरेक्टिन प्रमुख हैं।

प्राकृतिक रूप से उपस्थित पौधों के रसायन कीटों के व्यवहार तथा कार्यिकी को प्रभावित करते हैं, इसलिए कीटों मे इन रसायनों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न होना आसान नहीं होता। पौधों से प्राप्त कीटनाशक बिना किसी को क्षति पहुँचाते आसानी से अपने अवयवों में टूट जाते हैं। कीटों की संख्या को बढ़ने से रोकने वाले सक्रिय रसायन (वानस्पतिक कीटनाशक) बहुत सारे पौधों में भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। ये पौध-उत्पाद वो द्वितीय उपावयव है जो कीटों की मौलिक, क्रियात्मक व जैव रासायनिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं एवं ये आसानी से क्षरित होते हैं। पौधों की 2121 प्रजातियों में कीट नियंत्रण पौध-उत्पाद गुण पाये गये है, इनमें से 1005 में कीटनाशी, 384 में भोजनरोधी, 297 में प्रतिकर्षक, 31 में कीट वृद्धि निरोधी एवं 27 में कीट आकर्षण गुण पाये गये हैं। देश में लगभग 8 करोड़ नीम के पेड़ हैं जिनसे 0.7 करोड़ टन नीम के फलों का उत्पादन हो सकता है। आज 71 व्यावसायिक नीम आधारित कीट रसायन घोल फसलों पर इस्तेमाल करने के लिए उपलब्ध हैं। इनको समेकित प्रबन्ध कार्यक्रम में प्रयोग करके वातावरण पर विषैले कीटनाशकों के प्रभाव को कम किया जा सकता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि व्यावसायिक नीम आधारित कीट रसायनों के उपयोग की मात्रा लगभग 500 मि. लीटर प्रति हैक्टेयर से 5 लीटर प्रति हैक्टेयर तक है। इसमें सुधार लाने की आवश्यकता है। बाजार में उपलब्ध नीम आधारित कीट रसायनों की गुणवत्ता पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। वानस्पतिक कीटनाशियों का प्रयोग हानिकारक कीटों तथा व्याधियों की रोकथाम के साथ-साथ मृदा की उर्वरता को बढ़ाने में भी सहायक है।

जैविक नियंत्रण

प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रणाली में नाशीजीवों पर नियंत्रण उनके प्राकृतिक शत्रुओं के द्वारा स्वतः ही बना रहता है, लेकिन विकृत पारिस्थितिक प्रणाली में नाशीजीवों की संख्या बढ़ जाने पर अधिक संख्या में परजीवी एवं परभक्षी कीड़ों का इस्तेमाल करना पड़ता है। जैविक नियंत्रण कार्यक्रम में इन प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण ओर उनके संवर्द्धन को पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए। समेकित प्रबंधन कार्यक्रमों में परजीवी पर परभक्षी कीटों के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए ट्राइकोग्रामा, क्राइसोपरला, लेडीबर्ड भृंग आदि कीटों का प्रयोगशालाओं में कृत्रिम आहार पर उत्पादन कर व उनकी संख्या बढ़ाकर उन्हें प्रयोग में लाया जा रहा है। इससे कीटनाशी दवाओं के

छिड़काव में कटौती करके, फसल पर आने वाली लागत में कमी होती है तथा प्राकृतिक संतुलन की रक्षा होती है। हमें परजीवी एवं परभक्षी कीटों की ऐसी प्रजातियाँ विकसित करनी चाहिए जो विपरीत परिस्थितियों में भी जयादा कारगर सिद्ध हों। इन परजीवी कीटों में रासायनिक कीटनाशी दवाओं के प्रति प्रतिरोधी क्षमता को विकसित करना भी आवश्यक है।

सूक्ष्मजीवों का प्रयोग कर हानिकारक कीटों, विभिन्न रोगों व खरपतवारों को नियंत्रण करने की विधि जैविक नियंत्रण कहलाती है। इस विधि में प्रयोग आने वाले सूक्ष्म-जीव 'जैव नियंत्रक कारक' कहलाते हैं

हानिकारक कीटों या रोगों के नियंत्रण के लिए उपयोग में लाये जाने वाले सूक्ष्म-जीवों को क्रमशः जैव कीटनाशी या जैव रोगनाशी कहते हैं। जैव कीटनाशी जीवाणु, विषाणु, फफूँद, प्रोटोजोआ आदि हो सकते हैं। इनके प्रयोग से कीटों में इनके प्रति प्रतिरोधी क्षमता विकसित होने की संभावना भी नहीं रहती है। इनको कीटा नाशी रसायनों के साथ प्रयोग करने पर काफी प्रभावी पाया गया है। ये कीटों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित कर उनको निष्क्रिय कर मार देते हैं। जैव कीटनाशी का मुख्य जीवाणु बैसिलस थूरिजेन्सिस है। इस समय भारतवर्ष में बी.टी. पर आधारित जैव कीटनाशी का विपणन किया जा रहा है। जैव कीटनाशकों का वर्णन इस प्रकार है-

बी.टी. जीवाणु अल्ट्रा वॉयलेट प्रकाश से प्रभावित होता है। अतः दोपहर बाद ही इस जीवाणु का कीट नियंत्रण में प्रयोग किया जाना लाभप्रद है। इस जीवाणु से गण डिप्टेरा की सूँड़िया ही अधिक प्रभावित होती हैं, बी.टी. जीवाणु का एक ग्राम का एक लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है। खेत में इसका प्रयोग एक समान होना चाहिए। ऐसे क्षेत्र में जहाँ रेशम कीट पाले जा रहे हों, बी. टी. जीवाणु का प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा रेशम कीट की सूँड़ियाँ मर सकती हैं।

• बी.टी. जीवाणु-आजकल नाशीकीट के नियंत्रण हेतु बैसिलस थूरिन्जियेन्सिस नामक जीवाणु का प्रयोग बहुतायत से किया जा रहा है। निजी कम्पनियाँ भी इस कीटनाशी के उत्पादन में सहयोग कर रही हैं। यह जीवाणु डेल्टा एण्डोटॉक्सिन नामक विषैला द्रव्य कीटों के पेट के अन्दर छोड़ता है। फलस्वरूप कीट रोग ग्रस्त होकर मर जाता है। रोग ग्रस्त सूड़ियां सुस्त हो जाती हैं, मुँह से द्रव्य निकालती हैं, बाद में मर जाती हैं। ऐसे रोगग्रस्त सूंड़ियों से एकत्रित स्पोर का चूर्ण बनाया जाता है जिनका जीवन 6-12 माह का होता है। भारतीय बाजारों में बायोलेप, हाल्ट एवं डेलफिन जैसे नामों से बी.टी. कीटनाशी लोकप्रिय है बी.टी. जीवाणु अल्ट्रा वॉयलेट प्रकाश से प्रभावित होता है। अतः दोपहर बाद ही इस जीवाणु का कीट नियंत्रण में प्रयोग किया जाना लाभप्रद है। इस जीवाणु से गण डिप्टेरा की सूँड़िया ही अधिक प्रभावित होती हैं, बी.टी. जीवाणु का एक ग्राम का एक लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है। खेत में इसका प्रयोग एक समान होना चाहिए। ऐसे क्षेत्र में जहाँ रेशम कीट पाले जा रहे हों, बी.टी. जीवाणु का प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा रेशम कीट की सूँड़ियाँ मर सकती हैं।

• ट्राइकोकार्ड-यह ट्राइकोग्रामा फेसिएटम जाति की छोटी ततैया जो अंड परजीवी है, पर आधारित है। ये लेपिडोप्टेरा वर्ग के लगभग 200 प्रकार के हानिकारक कीटों के अंडों को खाकर जीवित रहती है। मादा ट्राइकोग्रामा अपने अण्डे हानि पहुँचाने वाले कीटों के अण्डों के बीच देती है। ट्राइकोग्रामा का जीवन-चक्र हानिकारक कीटों के अण्डों के बीच चलता है। ट्राइकोकार्ड की पूर्ति पोस्टकार्ड के रूप में होती है, इसमें एक कार्ड पर लगभग 20,000 अण्डे होते हैं। खेतों में जैसे हानिकारक कीट दिखाई दें, इन कार्ड के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर खेत में अलग-अलग स्थान पर पत्तियों के जोड़ पर धागे से बाँध देना चाहिए। ट्राइकोकार्ड का प्रयोग करने से पहले फ्रिज में या बर्फ के डिब्बे में रखें। इसका प्रयोग शाम के समय करना चाहिए। प्रयोग के पहले या बाद में रसायन का छिड़काव नहीं करना चाहिए। इसका प्रयोग सभी फलों, सब्जियों, गन्ना, कपास, सूर्यमुखी व दलहनी फसलों में प्रभावशाली है। बड़ी फसलों में 7 कार्ड/हेक्टेअर व छोटी फसलों में 5 कार्ड/हेक्टेयर का प्रयोग 10-15 दिन के अन्तराल पर 3-4 बार लाभदायक होता है।

• क्राइसोपर्ला-क्राइसोपर्ला हरे रंग के कीट हैं। इन कीटों के लार्वा सफेद मक्खी, माहू, जैसिड, व थ्रिप्स आदि के अण्डों और लार्वा को खाते हैं। इनका प्रयोग इन हानिकारक कीटों से प्रभावित खेतों व फसलों हेतु लाभदायक हैं। क्राइसोपर्ला के अण्डों को कोरसियरा के अण्डों के साथ लकड़ी के बक्से में बुरादे के साथ दिया जाता है। इनके लार्वा कोरसियरा के अंडों को खाकर व्यस्क बनते हैं। इनका प्रयोग 50,000-1,00,000 लार्वा या 500-1000 व्यस्क प्रति हेक्टेअर एक हफ्ते में दो बार करना चाहिए।

• लेडीबर्ड बीटल-यह काले रंग का आस्ट्रेलियन बीटल है। इनका प्रयोग अंगूर, शरीफा, गन्ना की फसल में मिलीबग क्रिप्टोलीमस और स्केल कीट हेतु लाभदायक पाया गया है। इसे लगभग 600 वयस्क प्रति एकड़ की दर से फसलों में छोड़ना चाहिए। इसके शिशु व प्रौढ़ दोनों ही कीटों को खाते हैं।

• ब्यूवेरिया बैसियाना-यह फफूँदी से बना जैव उत्पाद है। यह विभिन्न प्रकार के फुदके, फली छेदक, दीमक, बाल वाले कैटरपिलर, आदि को नियंत्रित करता है। यह फलों, फूलों, सब्जियों के लिए लाभदायक है। इसकी 1 किग्रा. मात्रा को 30-40 किग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ मिलाकर लगभग 7-15 दिनों तक नम करके रखने के बाद अन्तिम जुलाई से पहले 1 हेक्टेयर खेत में फैलाते है या इसके 1 किग्रा. पाउडर को 300-400 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव 12-15 दिन के अन्तर पर शाम के समय करना चाहिए। इसके प्रयोग से कीटों के अंडे, लार्वा प्यूपे व वयस्क सभी अवस्थाएँ पंगु व निष्क्रिय होकर मर जाती हैं।

• न्यूक्लियर पॉलिहेड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.)-एनपीवी विषाणु केवल इंगित कीट को रोगग्रस्त कर नियंत्रित करते हैं। कीटों की सूंड़ी जैसे ही विषाणु से संक्रमित फल, फूल, पत्ती या फल खाती है, ये विषाणु सूंड़ी के आहारनाल की कोशिकाओं से होती हुई न्यूक्लियस में पहुँचकर अधिक मात्रा में वृद्धि कर जाती हैं फलस्वरूप संक्रमित सूँड़ी पौधे के ऊपरी भाग पर चढ़कर लटक जाती है। सूंड़ी का शरीर गलने लगता है, सूँड़ी सुस्त हो जाती है, काली पड़ जाती है। पूरी तरह से संक्रमित सूँड़ी का शरीर फट जाता है एवं सफेद रंग का विषाणु मिश्रित तरल पदार्थ बाहर आने लगता है एवं सूँड़ी मर जाती है। विषाणु की संख्या सूक्ष्मदर्शी के देखकर इनकी सान्द्रता का पता करते हैं। हमारे देश में संवर्धित एवं विकसित एन.पी.वी. को चना, अरहर, टमाटर, सूरजमुखी, कपास मूँगफली इत्यादि फसलों में प्रयोग किया जा रहा है।

• परजीवी ब्रेकान-इस परजीवी के शिशु की तरह-तरह के बेधक कीटों की सूँड़ी पर आश्रित होकर उन्हें खा जाते हैं। कपास, सब्जियों, नारियल जैसी फसलों में प्रति एकड़ 500-1000 वयस्क डालने से ये लाभ मिलता है।

• पार्थीनियम बीटल-पार्थीनियम खरपतवार को नष्ट करने हेतु 'जाइग्रोगामा' नामक कीट को प्रयोग किया जा रहा है। यह कीट इस खरपतवार को खाकर समाप्त कर देता है। पार्थीनियम (गाजर घास) फसलों में उगने के साथ ही कुछ मनुष्यों और पालतू पशुओं में खुजली तथा अन्य बीमारियाँ फैलाते हैं। इसके अतिरिक्त नींबू के स्केल कीट का वैलेडिया भृंग द्वारा, नारियल के कीट का ब्रेकान द्वारा चना फली बेधक का कैमपोलेटिस क्लोरीडी से नियंत्रण किया जा रहा है।

ब्यूवेरिया बैसियाना फफूँदी से बना जैव उत्पाद है। यह विभिन्न प्रकार के फुदके, फली छेदक, दीमक, बाल वाले कैटरपिलर, आदि को नियंत्रित करता है। यह फलों, फूलों, सब्जियों के लिए लाभदायक है। इसकी 1 किग्रा. मात्रा को 30-40 किग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ मिलाकर लगभग 7-15 दिनों तक नम करके रखने के बाद अन्तिम जुलाई से पहले 1 हेक्टेयर खेत में फैलाते है या इसके 1 किग्रा. पाउडर को 300-400 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव 12-15 दिन के अन्तर पर शाम के समय करना चाहिए। इसके प्रयोग से कीटों के अंडे, लार्वा प्यूपे व वयस्क सभी अवस्थायें पंगु व निष्क्रिय होकर मर जाती हैं।

• ट्राइकोडर्मा-यह एक मित्र कवक है, जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी में पाया जाता है। इसकी अनेक प्रजातियाँ हैं जिसमें से 'ट्राइकोडर्मा विरिडी' प्रजाति प्रमुख रूप से प्रभावी कवकनाशी के रूप में उत्पादकों द्वारा बाजार में विपणन किया जा रहा है। ट्राइकोडर्मा अनेक प्रकार से कार्य करता है। यह रोगकारक कवक के तंतुओं को लपेटकर उनमें भोजन प्राप्त करता है और अन्त में शत्रु कवक को नष्ट कर देता है। यह एक आवरण बनाकर रोगजनित शत्रु कवक से पौधों की रक्षा करता है। इसका विकास शीघ्र होने के कारण अपने कवक तन्तुओं और पौधों की जड़ों के आस-पास फैला देता है जिससे शत्रु कवक पौधे के पास नहीं आ पाते हैं और रोग उत्पन्न नहीं कर पाते हैं। ट्राइकोडर्मा जैव रोगनाशक, जैव कीटनाशी व जैव उर्वरक है। ट्राइकोडर्मा फसलों में जड़ तथा तना गलन/सड़न, उक्ठा (फफूँदी जनक रोग) और सूत्रकृमि व्याधि को नियंत्रित करने हेतु प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग दलहनों, धान, गेहूँ, गन्ना, कपास, सब्जियों, फलों, फलवृक्षों पर करना लाभप्रद है। ट्राइकोडर्मा का प्रयोग कन्द, कार्प, राइजोम, नर्सरी पौधों को उपचार 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा को एक लीटर पानी में घोल बनाकर डुबोकर करें एवं इसके बाद बुआई या रोपाई करें। बीजशोधन के लिए 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा एक किला बीज में मिलाकर उपचारित कर बोये। इसके द्वारा बीजों का उपचार छायादार स्थान में करें। मृदा शोधन के लिए एक किलो ट्राइकोडर्मा को 25 किग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर, हल्के पानी को मिलाकर, छाया में रखें इसके बाद बुआई के पहले प्रयोग करें। यह मात्रा एक एकड़ के लिए पर्याप्त है। ट्राइकोडर्मा

ट्राइकोडर्मा–यह एक मित्र कवक है, जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी में पाया जाता है। इसकी अनेक प्रजातियाँ हैं जिसमें से 'ट्राइकोडर्मा विरिडी' प्रजाति प्रमुख रूप से प्रभावी कवकनाशी के रूप में उत्पादकों द्वारा बाजार में विपणन किया जा रहा है। ट्राइकोडर्मा अनेक प्रकार से कार्य करता है। यह रोगकारक कवक के तंतुओं को लपेटकर उनमें भोजन प्राप्त करता है और अन्त में शत्रु कवक को नष्ट कर देता है। यह एक आवरण बनाकर रोगजनित शत्रु कवक से पौधों की रक्षा करता है। इसका विकास शीघ्र होने के कारण अपने कवक तन्तुओं और पौधों की जड़ों के आस–पास फैला देता है जिससे शत्रु कवक पौधे के पास नहीं आ पाते हैं और रोग उत्पन्न नहीं कर पाते हैं।

के प्रयोग के पहले या बाद में किसी रासायनिक फफूँदीनाशक व अन्य रसायनों का प्रयोग न करें। पादप सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा के साथ नीम की खली का प्रयोग लाभप्रद होता है। इसके अलावा ट्राइकोडर्मा हारजीएनम और ग्लियोक्लेडियम वायरेन्स से काली मिर्च में लगने वाले 'फाइटोफ्थोरा कैपसिसी' का संक्रमण रोका जा सकता है। यह बाजार में सभी जगह तरल पदार्थ एवं चूर्ण के रूप में उपलब्ध हैं। इसके एक ग्राम में एक करोड़ कालोनी बनाने वाली इकाइयाँ होती है। इसको अन्य बहुत से वाहक के साथ भी बनाया जाता है। इसका अच्छा परिणाम पाने के लिए खेत में गोबर की खाद, हरी खाद व उपर्युक्त नमी भी होनी आवश्यक है। इसका प्रयोग करते समय हाथों को आँख व मुँह में न लगायें। उपचार करने के बाद हाथों को साबुन लगाकर अच्छे से धो लें। ट्राइकोडर्मा का भण्डारण धूप में या गर्म स्थानों पर नहीं करना चाहिए। यह निपटाट, अनमोलडर्मा, एकेडर्मा, संजीवनी, बायोडर्मा, इकोडर्मा आदि नामों से बाजार में बिक रहा है।

पराजीनी पौधे

आजकल विभिन्न फसलों में बेसिलस थूरिजिएन्सिस नामक जीवाणु के जीन को प्रवेश कराकर ऐसे पौधे तैयार किये जा रहे हैं जिससे जीवाणु की उपस्थिति के कारण कीटों के विरूद्ध कीटनाशक गुण आ जाते हैं। इस प्रकार के पौधों का विकास हीलियोथिस कीट पर नियंत्रण हेतु किया जा रहा है। भारत सरकार ने जैव उर्वरकों प्रोत्साहित करने के लिए देश के सात राज्यों में राष्ट्रीय परियोजनायें शुरू की हैं। देश के शीर्ष संस्था के रूप में राष्ट्रीय जैव उर्वरक केन्द्र की स्थापना गाजियाबाद में की गयी है। इसके अलावा देश में 6 क्षेत्रीय जैव उर्वरक विकास केन्द्र क्रमशः जबलपुर, नागपुर, हिसार, बैंग्लुरू, इम्फाल व भुवनेश्वर में स्थापित किया गया है। ट्राइकोडर्मा, ट्राइकोग्रामा तथा एन.पी.वी. का उत्पादन उत्तर प्रदेश में 6 आई.पी.एम. प्रयोगशालाओं हरदोई, आजमगढ़, वाराणसी, जालौन, बरेली तथा मथुरा के साथ कानपुर, फैजाबाद व मोदीपुरम (मेरठ) कृषि विश्वविद्यालयों तथा भारत सरकार की दो प्रयोगशालाओं, गोरखपुर व लखनऊ में एवं क्राइसोपर्ला का उत्पादन, मेरठ विश्वविद्यालय में तथा सभी जैव कारकों व जैव कीटनाशी का उत्पादन अनेक निजी कम्पनियों में भी किया जा रहा है। आठ नये जैव कीटनाशकों को तथा दो पायलट जैव नियंत्रक प्रायोगिक संयंत्रों का विकास किया गया है। आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण फसलों के लिए जैव नियंत्रकों जैसे-बैकुलोवायरस एंटागोनिस्टिक्स, पैरासाइट प्रीडेटर्स बैक्टीरिया तथा फफूँदी के बड़े स्तर पर उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी को उद्योगों को स्थानान्तरित किया गया है।

कृषिगत अथवा पारिस्थितिकीय नियंत्रण

हमारी प्राचीन कृषि पद्धति बहुत ही उपयुक्त एवं पर्यावरण के अनुकूल थी। मौसम में परिवर्तन भी कम देखे जाते थे लेकिन आज की वैज्ञानिक कृषि प्रणाली में कीटों के संवर्धन में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई है अतः सभी कृषिगत क्रियाएं फसल हेतु उपयुक्त पारिस्थितिकी को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए। यदि फसल के वातावरण को परिवर्तित किया जाता है तो वह पारिस्थितिकीय नियंत्रण कहलाता है जबकि कृषिगत प्रबन्ध में वातावरण में सोद्देश्य हेरफेर करते हैं जिससे कीटों की संख्या में कमी आती है। कृषिगत उपायों में के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है-

- समय से जुताई, गुड़ाई, बुआई, निराई, सिंचाई करना चाहिए साथ ही रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग करना चाहिए।
- फसलों में पौध से पौध एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी, फसल के अन्दर एवं पड़ोस में उगाई गई फसलें, फसल चक्र, एवं फसल के बाद दूसरी फसल का अंतराल, बुवाई अथवा रोपाई के समय को ध्यान में रखकर कीटों की गतिविधियों में कमी की जा सकती है।

- मिश्रित खेती, पट्टीदार खेती तथा प्रपंच फसलें उगाकर कीटों के प्रकोप में कमी लाई जा सकती है।
- पोटैशियम उर्वरकों के संतुलित उपयोग से कीटों की संख्या में कमी आती है।

इस प्रकार किसानों द्वारा किये जाने वाले कृषि कार्यों जैसे भूमि की जुताई, स्वच्छ बीज का प्रयोग, सिंचाई का नियमन, बुआई व कटाई के समय का सुनियोजन, ट्रेप फसलों का प्रयोग, सुनियोजित फसल-चक्र व फसल अवशेषों के विघटन इत्यादि द्वारा नाशीजीवों का नियंत्रण किया जाता है। इन्हें ठीक तरीके से अपनाने में काई अतिरिक्त लागत भी नहीं आती है। जिस कीट विशेष को नष्ट किया जाना है अगर उसके जीवन वृतान्त, व्यवहार, आवास व पारिस्थितिकी को पूरी तरह समझ लिया जाए तो खेती विषयक पद्धतियों को परिष्कृत किया जा सकता है। इन तरीकों अपनाने में अतिरिक्त लागत नहीं आती है लेकिन किसानों को नाशीजीवों के प्रबन्ध में इनसे होने वाले लाभों के बारे में पर्याप्त जानकारी देना आवश्यक है। सही समय पर विभिन्न क्रियायें अपनाने से नाशीजीवों एवं व्याधियों की समस्याओं को काफी हद तक रोका जा सकता है।

किसानों द्वारा किये जाने वाले कृषि कार्यों जैसे भूमि की जुताई, स्वच्छ बीज का प्रयोग, सिंचाई का नियमन, बुआई व कटाई के समय का सुनियोजन, ट्रेप फसलों का प्रयोग, सुनियोजित फसल-चक्र व फसल अवशेषों के विघटन इत्यादि द्वारा नाशीजीवों का नियंत्रण किया जाता है। इन्हें ठीक तरीके से अपनाने में अतिरिक्त लागत भी नहीं आती है। जिस कीट विशेष को नष्ट किया जाना है अगर उसके जीवन वृतान्त, व्यवहार, आवास व पारिस्थितिकी को पूरी तरह समझ लिया जाए तो खेती विषयक पद्धतियों को परिष्कृत किया जा सकता है।

प्रतिरोधी पोषक पौधों को उगाना

प्रायः किसी फसल का जहाँ एक पौधा कीटों के प्रति अति संवेदनशील होता है तो वहीं पड़ोसी पौधा कीट प्रतिरोधी हो सकता है। प्रतिरोधी पौधे या तो कीटों द्वारा पसन्द नहीं किये जाते हैं या सहिष्णु होते हैं अथवा कीटों को पोषक आहार नहीं प्राप्त होता हैं अथवा कीटों को पोषक आहार नहीं प्राप्त होता है फलस्वरूप उनका आकार एवं विकास प्रभावित होता है। वे सभी पौधे जिनमें कीटों के प्रति कोई भी प्रतिरोधी लक्षण पाया जाय, प्रतिरोधी पोषक पौधा या प्रजाति कहलाती है। प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिरोधी प्रजातियों को खेती में उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए अन्यथा प्रतियोगी प्रजातियाँ टूट जाती हैं, ऐसा कीटों के बायोटाइप विकसित होने से होता है भारतवर्ष में भी नाशीकीट प्रतिरोधी प्रजातियाँ विकसित की गई हैं। धान की प्रतिरोधी प्रजातियां अधिकतर प्रदेशों में विकसित की गई है।

यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण

जब कीटों को किसी यंत्र की सहायता या किसी भौतिक विधि से भरा जाता है तो वह यांत्रिक या भौतिक नियंत्रण कहलाता है, इसके द्वारा तुरन्त परिणाम प्राप्त होते हैं, इसीलिए किसानों में यह विधि काफी रोचक और लोकप्रिय है। यांत्रिक उपायों में प्रकाश प्रपंच तकनीक अधिक प्रयोग में लाई जाती है। प्रकाश प्रपंच में पेट्रोमेक्स/लालटेन को एक चिपचिपे मोबिल ऑयल से भरे टब में रखकर खेत में रख देते हैं, तो रात में निकालने वाले नर व मादा कीट प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं और टब में गिरकर मर जाते हैं। कीट नियंत्रण के भौतिक उपायों में भौतिक साधनों जैसे ताप, प्रकाश, ध्वनि, बिजली आदि का प्रयोग करके कीटों की संख्या में कमी लाई जाती है।

फैरोमोन का प्रयोग

प्रत्येक कीट जाति का अपना अलग फैरोमोन रसायन होता है, प्रायः मादा कीट एक प्रकार का हार्मोन निकालकर नरकीट को मैथुन हेतु आकर्षित करते हैं। वैज्ञानिकों ने अनेक कीटों के इस व्यवहार को ही केवल नहीं पहचाना बल्कि हार्मोन के रसायन को भी पहचाना है। उन्हीं रसायनों को कृत्रिम रूप से संश्लेषित कर इनके प्रयोग हेतु कई प्रकार के सेप्टा एवं प्रपंच को भी विकसित किया है। इनका प्रयोग अब नर कीटों को एकत्रित कर क्षेत्र में उनकी उपस्थिति एवं घनत्व को जानने के लिए कर रहे हैं। फैरोमोन रसायन प्रकृति के अनुरूप होते हैं। कीट नियंत्रण की अन्य विधियों से सहिष्णु भी होते हैं, कपास की गुलाबी सूंडी, गन्ने का बेधक कीट, चने की फली का बेधक कीट, तम्बाकू की सूंडी एवं भिण्डी का चितकबरा सूंडी के फेरोमोन का प्रयोग इनकी संख्या ऑकलन एवं मैथुन में अवरोध हेतु किया जा रहा है। जैविक खेती

यांत्रिक विधि से कीट नियंत्रण

जैविक खेती का एक उद्देश्य जीवंत तथा टिकाऊ खेती का विकास है। इसके अन्तर्गत फार्म प्रबंधन की ऐसी प्रणाली अपनाई जाती है जिससे पारिस्थितिकी सुरक्षित रहे, खरपतवार तथा नाशीजीवों पर नियंत्रण हो, वानस्पतिक तथा जन्तु अवशेषों का पुनर्चक्रण हो, फसल चक्र अपनाया जाय, सिंचाई, निराई, आदि की सही व्यवस्था हो। जैविक खेती में मृदा उर्वरता को स्थिर रखने के लिए ऐसी प्रणाली अपनाई जाती है जिससे जैव-सक्रियता अधिकतम बनी रहे, मिट्टी की भौतिक रासायनिक तथा जैविक दशा ठीक रहे और पौधों के लिए संतुलित पोषक तत्वों की पूर्ति होती रहे।

जैविक खाद तैयार करना

का एक उद्देश्य जीवंत तथा टिकाऊ खेती का विकास है। इसके अन्तर्गत फार्म प्रबंधन की ऐसी प्रणाली अपनाई जाती है जिससे पारिस्थितिकी सुरक्षित रहे, खरपतवार तथा नाशीजीवों पर नियंत्रण हो, वानस्पतिक तथा जन्तु अवशेषों का पुनर्चक्रण हो, फसल चक्र अपनाया जाय, सिंचाई, निराई, आदि की सही व्यवस्था हो। जैविक खेती में मृदा उर्वरता को स्थिर रखने के लिए ऐसी प्रणाली अपनाई जाती है जिससे जैव-सक्रियता अधिकतम बनी रहे, मिट्टी की भौतिक रासायनिक तथा जैविक दशा ठीक रहे और पौधों के लिए संतुलित पोषक तत्वों की पूर्ति होती रहे। वास्तव में 'जैविक खेती' खेती करने की कोई नई विधा नहीं है। हमारे देश के किसान अति प्राचीन काल से जैविक खेती का अभ्यास करते रहे हैं, क्योंकि खेतों को उपजाऊ बनाने के लिए जैविक खादों के अलावा कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं था। गोबर की खाद तथा सड़ा-गली पत्तियों को जैविक खाद खेती में डाली जाती थी और जो उपज मिलती थी वह सभी प्रकार के संदूषणों या प्रदूषणों से मुक्त होती थी। फलतः फसलों से प्राप्त खाद्य सामग्री का उपयोग करने से लोग हृष्ट-पुष्ट रहते थे, उन्हें इन अन्नों के माध्यम से कोई रोग नहीं होते थे। परन्तु रासायनिक उर्वरकों के प्रचलन के बाद जिस तरह उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि हुई है और अधिक उपज लेने के फेर में कीट नियंत्रण के लिए जिस तरह से कीटनाशियों का अत्यधिक उपयोग किया जाने लगा है, उसके कारण अब यह अनुभव हो रहा है कि खेती का वर्तमान स्वरूप, उसकी उर्वरण तथा कीट-नियंत्रण की विधियाँ मानव स्वास्थ्य के लिए घातक हैं। अतः जैविक खेती इन खतरों से बचने का एक कारगर विकल्प सिद्ध हो सकती है। जब फसलों में स्वतः कीटाणुओं से लड़ने की क्षमता हो तो कीटनाशकों के इस्तेमाल की जरूरत खत्म हो जाती है। जब फसलें प्राकृतिक रूप से ही सूक्ष्म पोषकों से संपन्न होती है तो अन्य पोषक पदार्थ उन्हें देना गैर जरूरी हो जाता है।

यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि कोई भी उत्पाद जैविक/कार्बनिक तभी कहला सकता है जब वह प्रमाण-पत्र प्रदाता द्वारा स्वीकृत हो। इसलिए उत्पादक तथा उपभोक्ता के मध्य बिचौलिए का काम करने के लिए कुछ एजेन्सियाँ बनाई गई हैं। उदाहरणार्थ जर्मनी में 30-40 तथा अमेरिका में 10-20 ऐसी एजेन्सियां हैं। किसानों को ऐसी एजेन्सियों से सम्पर्क करके अपने द्वारा उत्पन्न की जाने वाली फसलों का निरीक्षण कराने और तत्पश्चात निर्धारित मानदण्डों का पालन करने का उनसे सर्टिफिकेट प्राप्त करना होता है। निर्धारित मानदण्डों के अनुसार जैविक खेती शुरू करने और सर्टिफिकेट प्राप्त करने में कुछ समय लग सकता है, किन्तु यदि पहले से इन मानदण्डों के आधार पर खेती की जा रही हो तो फिर सर्टिफिकेट प्राप्त करने में समय नहीं लगता।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है जैविक खेती, पर्यावरण प्रदूषण एवं मानव स्वास्थ्य के बढ़ते खतरे से बचाव हेतु एक सशक्त विकल्प के रूप में कारगर सिद्ध हो सकती है। अतः दुनिया के सारे देशों को अविलम्ब जैविक खेती की ओर आकृष्ट होना चाहिए।

dineshmanidsc@gmail.com

❑❑❑

नया सीखने के लिए जरूरी है भूलना

प्रमोद भार्गव

चूहों पर किए सफल परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि विभिन्न माध्यामों से एकत्रित सूचनाएँ पहले हिप्पोकैंपस में आकर इकट्ठी होती हैं। इनके आपस में जुड़ने पर न्यूरॉन और स्मरण शक्ति का मुख्य मार्ग मजबूत होता है। मुख्य मार्ग बंद करने की स्थिति में सीखने की क्षमता खत्म होने की बात सामने आई है। किंतु मार्ग खोलने पर नई चीजें सीखने की प्रक्रिया के दौरान पुरानी यादों से संपर्क धुंधला पड़ने की जानकारियाँ मिलीं। इससे साफ हुआ कि नया याद रखने के लिए भूलना आवश्यक है।

कुछ समय बाद सूचनाओं, घटनाओं या किताब के पाठों को भूलना मस्तिष्क अथवा बुद्धि से जुड़ी कमजोरी या बीमारी नहीं है। बल्कि यह नई चीजों को याद रखने की दृष्टि से शरीर की एक प्रक्रिया है। हाल ही में लंदन में हुए एक ताजा शोध से पता चला है कि नई चीज़ें सीखने के लिए पुरानी बातें भूलना जरूरी है।

इस तथ्य का खुलासा योरोपीय मॉलीक्यूलर बायोलॉजी प्रयोगशाला और स्पेन के पाब्लो ओलविडो विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने दिमाग और स्मरण शक्ति पर अनुसंधान करके किया है। इस शोध से स्पष्ट हुआ है कि सीखने के प्रक्रिया के दौरान मस्तिष्क पिछली यादों को भूलने का प्रयास करता है, ताकि नई यादों के लिए जगह खाली हो सके। मॉलीक्यूलर बायोलॉजी के वैज्ञानिक कार्नोलियस का दावा है कि यह पहला अवसर है, जब मस्तिष्क में पुरानी बातों को भूलने की आंतरिक प्रक्रिया के बारे में पता लगाया गया है। सामान्य तौर पर सीखने के लिए संपर्क या सूचना का आदान-प्रदान जरूरी है। यह सब बाद में यादों का हिस्सा बन जाता है। शोधकर्ताओं ने 'हिप्पोकैंपस', यानी स्मरण शक्ति के लिए जिम्मेदार मस्तिष्क के हिस्से पर लंबे समय तक अध्ययन किया। इस दौरान वैज्ञानिकों ने नई जानकारी को याद रखने और पुरानी यादों को भूलने के बीच संबंध स्थापित किया है।

चूहों पर किए सफल परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि विभिन्न माध्यमों से एकत्रित सूचनाएँ पहले हिप्पोकैंपस में आकर इकट्ठी होती हैं। इनके आपस में जुड़ने पर न्यूरॉन और स्मरण शक्ति का मुख्य मार्ग मजबूत होता है। मुख्य मार्ग बंद करने की स्थिति में सीखने की क्षमता खत्म होने की बात सामने आई है। किंतु मार्ग खोलने पर नई चीजें सीखने की प्रक्रिया के दौरान पुरानी यादों से संपर्क धुंधला पड़ने की जानकारियाँ मिलीं। इससे साफ हुआ कि नया याद रखने के लिए भूलना आवश्यक है। गोया, याद रखे बिना तो किसी तरह गुजारा हो सकता है, लेकिन भूले बगैर ज़िंदगी आगे बढ़ना मुमकिन नहीं है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भूलना कोई अभिशाप नहीं, वरन प्रकृति का अद्वितीय वरदान है।

यहाँ यह भी गौरतलब है कि प्रत्येक इंसान की याद रखने की क्षमता भी भिन्न-भिन्न होती है। इसे निरंतर अभ्यास या कुछ अन्य तरीकों से बढ़ाया जा सकता है।

जैसे कि हमारे फिल्म और संगीत से जुड़े कलाकार या खिलाड़ी अपना मुकाम रियाज के जरिए हासिल कर लेते हैं। लेखक और महान वैज्ञानिकों के बारे में भी यही धरणा है। फ्लोरिडा स्टेट विवि के वैज्ञानिक एण्डर्स एरिकसन मानते हैं कि अपनी रूचि के विषय के बारे में जानकारी सहेजने के लिए सशक्त याददाश्त विकसित की जा सकती है। ये लोग अपने विषय से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी को अपने दिमाग में सहेज लेते हैं। इसके बाद प्रसंगानुकूल संग्रहित जानकारी का इस्तेमाल करते हैं। इसीलिए हमारे यहाँ शताब्दियों से यह लोकोक्ति प्रचलन में है, 'करत-करत अभ्यास, जन जड़मति होत सुजान।' इसीलिए एरिकसन जैसे वैज्ञानिकों का मानना है कि न तो बौद्धिक पैदा किए जा सकते हैं और न ही उनमें कोई विशेष जींस होते हैं। जो लोग जिन क्षेत्रों में अपनी छाप छोड़ते हैं, उनके पीछे उनकी कड़ी मेहनत और लगन अहम् होती है। इसे हम कम्प्युटर की बुद्धि मसलन सॉफ्टवेयर के जनक बिल गेट्स की मिसाल से समझ सकते हैं। बिल गेट्स की अकादमिक शिक्षा में रूचि नहीं थी, लेकिन वे कोरे कागजों और कम्प्युटर स्कीन पर आड़ी-तिरछी रेखाएं खींचने में लगे रहते थे। यही रेखाएं एक दिन सॉफ्टवेयर तकनीक के विकास का मंत्र बन गईं।

एरिकसन जैसे वैज्ञानिकों का मानना है कि न तो बौद्धिक पैदा किए जा सकते हैं और न ही उनमें कोई विशेष जींस होते हैं। गोया, जो लोग जिन क्षेत्रों में अपनी छाप छोड़ते हैं, उनके पीछे उनकी कड़ी मेहनत और लगन अहम् होती है। इसे हम कम्प्युटर की बुद्धि मसलन सॉफ्टवेयर के जनक बिल गेट्स की मिसाल से समझ सकते हैं। बिल गेट्स की अकादमिक शिक्षा में रूचि नहीं थी, लेकिन वे कोरे कागजों और कम्प्यूटर स्कीन पर आड़ी–तिरछी रेखाएँ खींचने में लगे रहते थे। यही रेखाएं एक दिन सॉफ्टवेयर तकनीक के विकास का मंत्र बन गईं।

बावजूद यह बहस निरंतर बनी हुई है कि बृद्धि वंशानुगत है अथवा सीखने - सिखाने से विकसित होती है। बुद्धि में आनुवांशिकता और परवरिश के योगदान को लेकर यह बहस सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्योंकि समय-समय पर किसी व्यक्ति ही नहीं, बल्कि पूरे के पूरे समुदायों को मूर्ख घोषित कर दिया जाता है। हमारे यहाँ घुमंतू और वन्य जीवों को पालकर उन्हें करतब सिखाकर प्रदर्शन करने योग्य बनाने वाली जातियों के साथ यही मजाक हुआ है। कच्चे लोहे से घरेलू व खेती-किसानी में उपयोग में लाए जाने वाले औजार बनाने वाले गाड़िया लुहारों का भी यही हश्र हुआ। इस लिहाज से अब वैज्ञानिक धीरे-धीरे इस राय पर सहमत हो रहे हैं कि बुद्धि पर आनुवांशिकता और परवरिश दोनों का मिला-जुला असर होता है। लिहाजा अवसर मिले तो किसी में भी अद्वितीय बौद्धिक विकास संभव है।

दरअसल मानव जीनोम शृंखला का पता लगने के बाद इस बात की होड़ मची है कि हर चीज का जीन खोज निकाला जाए। इसीलिए अक्ल यानी बुद्धि के जीन का पता लगाने की कोशिशें भी हो रही हैं। लंदन के इंस्टीट्यूट ऑफ सायकिएट्री के वैज्ञानिक रॉबर्ट प्लोमिन के नेतृत्व में इस तथ्य की तलाश की गई। शोध का मकसद उन जींस को पहचानना था, जो व्यक्ति को बुद्धिमान बनाते हैं। इस हेतु सात हजार, सात वर्षीय बालकों की बुद्धि के परीक्षण किए गए। साथ ही उनके खून के नमूने भी लिए गए। इसके बाद परीक्षणों के परिणामों के आधार पर बच्चों को बुद्धि के क्रम में बैठाया गया। सर्वाधिक और सबसे कम अंक पाने वाले बच्चों के डीएनए में फर्क का हिसाब लगाया गया। इससे शोधार्थियों को यह परखने में मदद मिली कि उच्च प्राप्तांक और निम्न प्राप्तांक वाले बच्चों के डीएनएन में कहाँ-कहाँ अंतर है और इन अंतरों की कोई निश्चित पद्धति है। इस तुलना के परिणामों को देखकर वैज्ञानिक किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाए। क्योंकि ये निष्कर्ष हमारी प्रचलित मान्यताओं के अनुरूप ही थे।

निष्कर्ष से पता चला कि बुद्धि के विकास में यदि जींस का योगदान है, तो ऐसे सैकड़ों जींस हैं। दूसरी बात यह भी पता चली कि बुद्धि के विकास में प्रत्येक जींस का योगदान इतना कम होता है कि उसका स्पष्ट ऑकलन ही संभव नहीं है। शोधकर्ताओं ने ऐसे छः जींस पहचाने जो उच्च या निम्न बुद्धिमत्ता से बहुत निकटता से जुड़े लगते थे। इनमें से सबसे सशक्त जींस का भी बुद्धि पर इतना असर होता है कि वह 0.4 प्रतिशत का अंतर पैदा कर सकता है। सभी छः जींस मिलकर भी महज बमुश्किल एक प्रतिशत का

हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में ऐसी अनेक वनस्पतियों का उल्लेख है, जिनके सेवन से बुद्धि बढ़ने का दावा किया गया है। दिमागी दवा के रूप में 'ब्राह्मनी' का चलन सदियों पुराना है। इस बूटी का वैज्ञानिक नाम 'बैकोपा मोनीरा' है।

असर ही पैदा कर सकते हैं। वैज्ञानिकों को इन नतीजों से आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वे जानते हैं कि बुद्धि जैसा पेचीदा गुणधर्म एक या दो जींस पर निर्भर नहीं हो सकता है। इसीलिए यह धारणा बनी हुई है कि दिमाग में चेतना या बुद्धि का कोई एक निर्धारित स्थान नहीं है, बल्कि वह पूरे दिमाग की समनिव्त क्रिया का नतीजा है। इस लिहाज से दिमाग में नई यादें बनाए रखने के लिए भूलने का सिलसिला जारी रहता है।

इन अध्ययनों से यह भी पता चला है कि बृद्धि या स्मरण शक्ति को दवाओं के सेवन से बढ़ाया नहीं जा सकता है। इसके विपरीत दवाओं के गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। बावजूद भारत समेत पूरी दुनिया में बौद्धिक क्षमता बढ़ाने वाली दवाओं की खोज मानव सभ्यता के विकसित होने के शुरूआती चरणों में ही शुरू हो गई थी। हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में ऐसी अनेक वनस्पतियों का उल्लेख है, जिनके सेवन से बुद्धि बढ़ने का दावा किया गया है। दिमागी दवा के रूप में 'ब्राह्मनी' का चलन सदियों पुराना है। इस बूटी का वैज्ञानिक नाम 'बैकोपा मोनीरा' है। दरअसल आधुनिक वैज्ञानिक शोधों में जड़ी-बूटियों के प्रभावी रसायनों को पहचानकर अलग कर लिया जाता है। ब्राह्मनी के साथ भी यही किया गया है। इसके दो रसायन अलग करके दवा बनाई गई है। ये रसायन बैकोसाइड-ए और बी नामों से जाने जाते हैं। परीक्षणों से पता चला कि इनमें दिमाग में याददाश्त बढ़ाने वाले रसायन आरएनए (रिबो न्यूक्लिएसिड) और डीएनए की मात्रा बढ़ जाती है। बुढ़ापे के कारण दिमाग में होने वाले बदलाव भी कम हो गए। इसके सेवन के बाद हानिकारक प्रभाव भी शरीर में देखने को नहीं मिले। बावजूद बृद्धिमता कितनी बढ़ी यह स्पष्ट नहीं हुआ। तैत्तरेय उपनिषद में यह दावा किया गया है कि 'मेघा सूक्तम' छंदों का सही उच्चरण किया जाए तो दिमाग की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। ये उदाहरण केवल इसलिए दिए गए है कि बुद्धि के विकास में आधुनिक वैज्ञानिक ही नहीं प्राचीन मनीषी भी लगे रहे हैं।

बहरहाल भूलना कोई बीमारी नहीं है, जिसका उपचार किया जाए। प्रत्येक इंसान की स्मरण शक्ति एक कुदरती क्षमता है, जो अनेक कारकों से सक्रिय रहती है। हाँ, उम्र के साथ जिस तरह हमारी अन्य शारीरिक व मानसिक क्षमताओं का क्षरण होता है, उसी क्रम में बुद्धि का क्षरण भी मुमकिन है। ताजा शोध भी ज्यादा कुछ नया देने की बजाय सिर्फ इतना तय कर पाया है कि नया याद करने के लिए पुराना भूलना न तो कोई बुरी बात है और न ही किसी दिमागी रोग का पर्याय है। लिहाजा नई याद रखने के लिए पुरानी यादें भूलने पर चिंतित होने की जरूरत नहीं है।

pramod.bhargava15@gmail.com

❑❑❑

'भोपाल के पक्षी'
लेखक : डॉ. स्वाति तिवारी
प्रकाशक : आईसेक्ट विश्वविद्यालय
मूल्य : 400 रुपये

'भोपाल के पक्षी नामक' पुस्तक में प्रवासी पक्षियों के जीवन के वैज्ञानिक पक्ष उजागर हुए हैं।

पक्षी सभी उम्र के व्यक्तियों के लिए आकर्षण का केंद्र बने रहते हैं। पक्षियों को जानने की जिज्ञासा जैसे- वे कहां से आते हैं और कहाँ पाए जाते हैं, उनका भोजन, अंडा और अन्य विशेषताओं से संबंधित जानकारी इस पुस्तक में उपलब्ध कराई गई है। लेखिका डॉ.स्वाति तिवारी स्वयं जीव-विज्ञान की विद्यार्थी रही हैं और उन्होंने पक्षियों को अपने कैमरे में कैद कर पुस्तक के माध्यम से उपलब्ध कराया है। लेखिका को विश्वास है कि इसे पढ़कर पाठक स्वयं बर्ड वॉचिंग कर सकेंगे।

कई संगठनों की संचालक डॉ. तिवारी का हिन्दी साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक उनकी 15 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आपको कई उल्लेखनीय सम्मान और पुरस्कार प्राप्त है जिसमें राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग दिल्ली का सम्मान, वगेश्वरी सम्मान, राष्ट्रीय लाड़ली मीडिया पुरस्कार शामिल हैं। आप अफ्रीका और भारत के विश्व हिन्दी सम्मेलन में मध्यप्रदेश शासन का प्रतिनिधित्व कर चुकी हैं।

अंधेरे की ओर ले जाती ज्यादा रोशनी

विजन कुमार पाण्डेय

संसार की एक-तिहाई आबादी को आकाशगंगा दिखाई ही नहीं देती है। इस चकाचौंध से होने वाली सांस्कृतिक हानि अभूतपूर्व और कल्पना के परे है। वैज्ञानिकों की एक अंतरराष्ट्रीय मंडली ने दुनिया भर में प्रकाश प्रदूषण का मानचित्र बनाया है। अंतरिक्ष में तैरते उपग्रहों से लिए चित्रों की सहायता से उन्होंने नाप कर पाया कि दुनिया भर में प्रकाश प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि 80 फीसदी लोग इसकी चपेट में हैं। धीरे धीरे दुनिया प्रकाश के चकाचौध में अंधेरे में डूब रही है।

आज तक किसी ने सपने में भी यह नहीं सोचा होगा कि यह जगमगाता संसार हमें घोर अंधकार की ओर ले जा रहा है। प्रकाश प्रदूषण (Light Pollution or Over Illumination), यह अपने तरह का एक नया प्रदूषण है। ऐसा किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि प्रकाश भी प्रदूषण का एक सबल कारण हो सकता है। आज खगोलीय अध्ययन से लेकर पशु-पक्षी और मानव जाति भी परोक्ष-अपरोक्ष रूप से इसके चपेट में आ चुके हैं। बचपन में जब हम गर्मियों की छुट्टियों में गाँव जाते थे तो कई बार खुली छत पर सोने का मौका मिलता था। घोर कालिमा लिए हुए आकाश पर स्पष्ट तारे स्कूल का श्यामपट्ट याद दिलाता जिस पर प्रति ने चाक से कई टिमटिमाते बिंदु बना डाले थे। यह वही वक्त था जब मैंने तारा समूहों को भी पहचानना शुरू कर दिया था। लेकिन एक बात हमेशा मुझे अचरज में डालती थी कि गाँव में आकाश इतना स्पष्ट और साफ कैसे है? तीसरी क्लास के अबोध मन ने बस इतना ही अंदाज लगाया कि आकाश यहाँ ज्यादा नीचा है या गाँव की जमीन आसमान के ज्यादा समीप ! वहीं जब मैं शहर लौट आता तो वहीं आकाश के तारे धुंधले क्यों दिखाई देते थे? यही प्रश्न मैं जब मैंने अपने टीचर से पूछा तो उन्होंने मुझे इस तरह समझाया जो आजतक मेरे दिमाग से नहीं निकला। इसी की एक बानगी यहाँ प्रस्तुत है।

पहले अगर किसी गाँव में बल्ब जले तो आस-पास के लोग उसे देखने आते थे। बच्चे रात में लालटेन जलाकर पढ़ते थे। रात के अंधेरे में दूर-दूर तक रोशनी नहीं रहती थी। घोर अंधेरी रात में लोग जीते थे। पहले प्रकाश कम अंधेरा ज्यादा था अब अंधेरा कम प्रकाश ज्यादा है। चारों ओर बिजली के चमचमाते प्रकाश ने हमारी दुनिया बदल दी है। शहरों में तो रोशनी की जैसे बाढ़ आई रहती। वहाँ अंधेरा ढूँढ़ते रह जाएँगें आप। कई शहरों में तो तारे इसलिए नहीं दिखते हैं कि धुंआ ज्यादा होता है। दुनिया के कई शहर प्रकाश प्रदूषण से प्रदूषित हो चुके हैं। आज संसार की एक-तिहाई आबादी को आकाशगंगा दिखाई ही नहीं देती है। इस चकाचौंध से होने वाली सांस्कृतिक हानि अभूतपूर्व और कल्पना के परे है। वैज्ञानिकों की एक अंतर्राष्ट्रीय मंडली ने दुनिया भर में प्रकाश प्रदूषण का मानचित्र बनाया है। अंतरिक्ष में तैरते उपग्रहों से लिए चित्रों की सहायता से उन्होंने नाप

कर पाया कि दुनिया भर में प्रकाश प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि अस्सी फीसदी लोग इसकी चपेट में हैं। धीरे धीरे दुनिया प्रकाश के चकाचौध में अंधेरे में डूब रही है।

अदृश्य होती आकाशगंगा

मनुष्यता आज अपने ही बनाए प्रकाश की चादर में ढंक गई है। हमारे चारों ओर कोहरा सा छा गया है। यह हमारी दृष्टि के लिए बाधा है। दृष्टिबाधित होना अंधापन है। यह प्रकाश हमें सत्य से असत्य की ओर नहीं ले जा सकता। उलटा यह हमें अपने छोटे-छोटे असत्यों की सीमा में बांध रहा है। इतना प्रकाश कि उसके सामने सत्य की आँखे भी चौंधिया जाएँ। इस प्रदूषण की शुरुआत 19वीं शताब्दी में हुई। रात को सार्वजनिक इलाकों में बिजली की बत्तियाँ लगनी से प्रकाश प्रदूषण की शुरूआत हो गई थी। इस समय विकसित देश सबसे ज्यादा प्रकाश प्रदूषण के चपेट में हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप के देशों में 99 प्रतिशत लोगों के लिए आकाशगंगा अदृश्य हो चुकी है। पेरिस में रहने वाले अगर आकाशगंगा देखना चाहें तो उन्हें 900 किलोमीटर की दूरी चल कर स्कॉटलैंड जैसी जगहों तक जाना पड़ेगा। अविकसित और पिछड़े कहे जाने वाले देशों में यह समस्या अभी नहीं है। मध्य अफ्रीका और ग्रीनलैंड में आकाशगंगा के दर्शन अभी भी हो सकते हैं।

जब 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' लिखा गया था तब सूरज डूबने के बाद दिए जलते थे। उस समय आकाश तारों से जगमगाता था। आज आकाश प्रकाश के प्रदूषण से छिपता जा रहा है। आकाश में तारे नहीं धुंधला प्रकाश कोहरा दिखाई पड़ता है। आज नकली सूरज बनाने की ताक में वैज्ञानिक हैं। अगर ऐसा हुआ तो रात और दिन में कोई फर्क ही नहीं रह जाएगा। लोगों को पता ही नहीं चलेगा कि कब रात बीती और सबेरा हो गया।

कैसे फैल रहा प्रकाश प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण की तरह दुनिया अब प्रकाश प्रदूषण के घोर अंधकार में डूब जाएगा। ध्वनि प्रदूषण तो दिन रात फैल रहा है लेकिन प्रकाश प्रदूषण केवल रात को होता है। क्योंकि दिन में तो सूरज का प्रकाश अपनी रोशनी फैलाता है। लेकिन रात में जब बिजली की बत्तियों से जो उजाला निकलता है वह आकाश की ओर फैलता है। यह वायुमंडल में मौजूद सूक्ष्म कणों से टकरा कर चारों तरफ फैल जाता है। इस घटना को प्रकीर्णन कहते हैं। इससे एक बनावटी दमक पैदा हो जाती है, जिसके कारण हमें आकाश धुंधला सा दिखाई देता है। ऐसा लगता है जैसे रात में प्रकाश का कोहरा छा गया है। इस कोहरे के कारण हमें आकाश के तारे दिखाई नहीं देते। धीरे-धीरे ये प्रकाश प्रदूषण की तीव्रता बढ़ती जा रही है। जिसका बुरा असर हमारी आँखों पर पड़ रहा है। आकाशगंगा अंतरिक्ष का वह हिस्सा है जिसके एक छोटे से हिस्से में हमारा सौर मंडल तैर रहा है। मनुष्य की समझ उसकी कल्पना पर टिकी है। हमारी कल्पना की उड़ान आकाश में तारों और आकाशगंगा को देखकर होती है। टिमटमाते, जगमगाते तारों को देख कर ही हमें यह आभास होता है कि हम एक विशाल सृष्टि का भाग हैं। यह भान ही हमें अपने सीमित जीवन और संदर्भों के पार देखने के लिए प्रेरित करता है। हमें यह विश्वास दिलाता है कि हमारे सुख-दुख, हानि-लाभ, राग-द्वेष से कहीं बड़ा यह संसार है। हमारी धरती के बाहर आकाश में भी तारों की एक दुनिया है ऐसा आभास हमें तभी होता है जब हम तारों को देखते है। अगर यह कल्पना नहीं होती तो हम अपनी-अपनी सीमित और क्षणिक अनुभूतियों में ही डूबे रहते। लेकिन जो विश्व दर्शन हमसे पहले की पीढ़ियों को मिला वह हमें आज नहीं मिल सकता। हम अप्राकृतिक प्रकाश के चक्कर में अंधकार की ओर बढ़ रहे हैं। अंधकार के दूर होने से हमारी दुनिया छोटी हो गई है, क्योंकि प्रकाश प्रदूषण हमें उन संदर्भों से दूर ले जा रहा है जो मनुष्यता की जड़ हैं।

दुनिया में अंधेरा बहुत कम बचा है

जब 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' लिखा गया था तब सूरज डूबने के बाद दिए जलते थे। उस समय आकाश तारों से जगमगाता था। आज आकाश प्रकाश के प्रदूषण से छिपता जा रहा है। आकाश में तारे नहीं धुंधला प्रकाश कोहरा दिखाई पड़ता है। आज नकली सूरज बनाने की ताक में वैज्ञानिक हैं। अगर ऐसा हुआ तो रात और दिन में कोई फर्क ही नहीं रह जाएगा। लोगों को पता ही नहीं चलेगा कि कब रात बीती और सबेरा हो गया। पहले मुसाफिर और नाविक सितारों के इशारों से अपनी मंजिल तक पहुँच जाते थे। अंधकार से प्रकाश की ओर जाना तब उपमा थी असत्य से सत्य की ओर जाने के लिए। अब ऐसा लगता है हम प्रकाश से अंधकार की ओर जा रहे हैं। मृत्यु से अमरता की ओर जाने का रास्ता भी हमें प्रकाश ही दिखाता था। किसे कितना सत्य मिला, कौन अमर हुआ, यह तो अभी भविष्य के गर्त में है। लेकिन यह बात सत्य है कि हमारी दुनिया में अंधेरा बहुत कम बचा है। पर्यावरण की यह नवनिर्मित समस्या है जिससे खुद मानव, पशु और

प्रकाश प्रदूषण के प्रति हम एकदम लापरवाह हैं। समय के साथ यह समस्या और बिगड़ ही रही है। अगर सोडियम की सभी पीली बत्तियों को बदल कर एलईडी की नीली बत्तियाँ से बदल दिया जाए, तो इससे बिजली की खपत में कटौती तो निश्चित ही हो जाएगी, लेकिन इससे प्रकाश प्रदूषण दोगुना हो जाएगा। इसका बुरा परिणाम केवल हम पर ही नहीं हैं बल्कि कई पक्षी, कीड़े और दूसरे प्राणियों पर भी पड़ रहा है।

पेड़-पौधे तक प्रभावित हो रहे हैं। इसके मुख्य कारण रात्रि की अधिकाधिक रोशनी और आधुनिक जीवन शैली है।

प्रकाश प्रदूषण क्या है?

अन्य प्रदूषण की तरह यह भी नयी सभ्यता और औद्योगिक विकास की देन है। इसके मुख्यतः दो कारण है-वायु प्रदूषण के साथ त्रिम रोशनी का गलत और बेवजह इस्तेमाल। जब प्रकाश के विभिन्न स्रोतों को गलत तरीके से लगाया जाए तो यह वायुमंडल में विद्यमान कणों से विसर्जित और बिखर कर पूरे वातावरण में फैल जाता है। इससे रात्रि का आकाश लालिमा लिए नजर आता है। जहाँ जगमगाहट ज्यादा है, वहाँ प्रकाश प्रदूषण और भी ज्यादा विद्यमान होता है। अमेरिका के लॉस एंजिल्स शहर के 1994 में आये भूकंप से शहर की पूरी बिजली स्थिति चरमरा गयी थी। उस समय वहाँ के लोगों ने पहली बार घना आकाश और उसमें सितारों को देखा था। ऐसा देख उन्होंने डरकर आपातकाल नंबर पर फोन कर आसमान में किसी रुपहले चीज के होने की आशंका जताई। दरअसल उन्होंने पहली बार यह दृश्य देखा था। वह कुछ और नहीं अपितु हमारी आकाशगंगा (MILKY WAY) थी और वह नभ में टिमटिमाते सितारे देख रहे थे।

हमारा ध्यान तो ध्वनि प्रदूषण पर जरूर जाता है क्योंकि हमने इतनी आवाज़ अपने आसपास पैदा कर ली है कि शांति से रहना मुश्किल हो गया है। लेकिन प्रकाश प्रदूषण के प्रति हम एकदम लापरवाह हैं। समय के साथ यह समस्या और बिगड़ ही रही है। अगर सोडियम की सभी पीली बत्तियों को बदल कर एलईडी की नीली बत्तियाँ से बदल दिया जाए, तो इससे बिजली की खपत में कटौती तो निश्चित ही हो जाएगी, लेकिन इससे प्रकाश प्रदूषण दोगुना हो जाएगा। इसका बुरा परिणाम केवल हम पर ही नहीं हैं बल्कि कई पक्षी, कीड़े और दूसरे प्राणियों पर भी पड़ रहा है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी इसका असर होना तय है। हमारी नींद इस प्रदूषण से जरूर उड़ जाएगी। आप देखते होगें जलते बल्ब में रात की नींद हराम हो जाती है। दरअसल हमारा शरीर दिन और रात के अंतर के हिसाब से बना है। ज्यादा प्रकाश हमारी जैविक घड़ी को भी प्रभावित कर सकता है। इस प्रकाश प्रदूषण का असर क्या होगा यह इसलिए नहीं पता क्योंकि इस पर शोध अभी शुरूआती दौर में है। लेकिन जबतक शोध पूरा होगा तब तक बहुत लोग इससे प्रभावित हो चुके होगें। हो सकता है कि जिनकी आँखों में ज्योति है वे अपाहिज मान लिए जाएं। असली दृष्टि और कल्पना केवल अंधे लोगों के पास ही बचे।

प्रकाश प्रदूषण से नुकसान कितना

अगर ऐसा चलता रहा तो शहरी क्षेत्र से कुछ दिनों में तारों का दिखना दुर्लभ दृश्य होगा। इसे हम कुछ ऐसे भी समझ सकते हैं। अगर आप किसी सिनेमा हॉल में जाते हैं तो फिल्म दिखाने के दौरान सभी बत्तियाँ और दरवाजे बंद कर दिए जाते हैं ताकि पूरा थिएटर अंधकारमय हो जाए और स्क्रीन सुस्पष्ट दिखे। हम आज असमान में सही से तारे इसलिए नहीं देख पाते क्योंकि हमने आवश्कता से अधिक 'बत्ती' जला रखी है जिससे हमारी खगोलीय स्क्रीन धुंधली हो चुकी है।

पशु पक्षियों पर दुष्प्रभाव

प्रकाश प्रदूषण से पशु पक्षी सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं। रात्रि में भी प्रकाश के कारण कई पक्षी यह फैसला नहीं ले पाते कि सुबह है या रात। यही नहीं, यह उन प्रवासी पक्षियों को भी दिग्भ्रमित करता है जो साल में मौसम के अनुसार स्थान बदलते हैं। दरअसल वह चाँद और तारों को देख दिशा का पता लगाते हैं और किसी प्रकाशीय प्रान्त से गुजरते वक्त उनके स्थिति का सही आभास नहीं हो पाता। कई बार वह या तो इसी भ्रम में देर से या बहुत पहले निकल जाते हैं तथा बाद में गंतव्य स्थान पर अनुकूल मौसम न पाकर कई बार मर भी जाते हैं। अगर किसी तरह बच भी गए तो नीड़ निर्माण तथा प्रजनन प्रक्रिया के बाधित होने से उन पर बुरा असर पड़ता ही है। दूसरी तरफ पशु जहाँ धूप में अपनी छाया को देख स्थान का पता लगाते हैं, वही रात्रि के अनावश्यक प्रकाश उनके इस प्रतिक गुण को क्षीण कर रहे हैं। हालात यह है कि प्रकाश प्रदूषण के कारण प्रतिवर्ष लाखों प्रवासी पक्षी मारे जाते हैं।

मौसम चक्र में आ सकता बदलाव

मौसम पर इसका असर परोक्ष रूप से तो नहीं पड़ता, परन्तु अत्यधिक CO_2 उत्सर्जन के कारण पर्यावरण पर प्रभाव पड़ेगा। इससे मौसम चक्र में बदलाव की संभावना बढ़ जाएगी। CO_2 ने हमारे मौसम पर क्या प्रतिकूल प्रभाव डाला है इसके हम सभी भुक्तभोगी हैं।

पौधों पर होगा हानिकारक प्रभाव

पेड़-पौधे 'फोटोसिंथेसिस' की क्रिया द्वारा अपना भोजन बनाते हैं और रात्रि का अंधेरा उन्हें एक महत्वपूर्ण यौगिक तैयार करने में मदद करता है जिसे हम 'फाइटोक्रोम' के नाम से जानते हैं। लेकिन हर वक्त मिल रही रोशनी से उनके यह गुण और प्रक्रिया बाधित होगीं। पौधे भी सोते और जागते हैं। लगातार प्रकाश में रहने के कारण उनका भी सोना जागना हराम हो जाएगा।

मानव शरीर भी होगा प्रभावित

हमारा शरीर हमेशा प्रकाश के प्रभाव से प्रभावित हुआ है। ईश्वर ने हमारे शरीर का विकास प्रति के कुछ नियमों के तहत किया है। हम दिवा-रात्रि के उस ताल से पोषित-पल्लवित हुए हैं जो मानव के अस्तित्व में आने के समय से है। हमारी जैविक घडी भी इसी के अनुसार चलती है। चूँकि हम भी धीरे-धीरे 'अंधकार' से दूर होने लगे हैं, तो यह भी हमें कई बीमारियों का ग्रास बना रहा है। यह बात पर्याप्त नींद लेने की नहीं, बल्कि रात्रि में भी प्रकाश के समक्ष होने से है जो अप्राकृतिक है। ज्ञातव्य हो कि कम्प्यूटर स्क्रीन से निकल रहा प्रकाश भी उपरोक्त बाधा में अपनी भूमिका निभाता है। कम्प्यूटर स्क्रीन से निकल रहा नीला प्रकाश पूरे शरीर को प्रभावित करता है। इसलिए देर रात जागकर इस पर काम करना सिर्फ आँखें ही नहीं, समस्त शरीर के लिए नुकसानदायक है। हमारे शरीर में 'मेलाटोनिन' नमक एक हॉर्मोन का निर्माण तभी संभव होता है जब नेत्रों को अंधकार का संकेत मिलता है। इसका काम शरीर की प्रतिरोधक क्षमता से लेकर कोलेस्ट्रॉल में कमी या अन्य अति-आवश्यक कार्यों का निष्पादन है जो एक स्वस्थ शरीर के लिए अहम है।

तारों के अध्ययन पर बुरा प्रभाव

यह गलत धारणा है कि हब्बल टेलिस्कोप अन्तरिक्ष में सिर्फ इसलिए छोड़ा गया जिससे वह सितारों के नजदीक जा सके। दरअसल इसका मुख्य कारण था टेलिस्कोप का कम से कम व्यापक रोशनी से संपर्क हो। कई खगोलीय प्रयोगशाला भी सुदूर क्षेत्र में इसलिए ही बनाये जाते हैं कि प्रकाश का कोई हस्तक्षेप न हो। लेकिन प्रकाश का फैलता दायरा इसे भी प्रभावित करेगा। आसमान में रात के प्रकाश धुंध के कारण हमारे बच्चे भी तारा समूह नहीं देख पाएगें। जो चमकते तारे हमने कभी देखा था वे आज के बच्चे नहीं देख पा रहे हैं।

प्रकाश प्रदूषण से बचने का उपाय

इस प्रदूषण के मूलतः दो स्रोत हैं - पहला अधिकाधिक बाह्य रोशनी और दूसरा अनावश्यक अंदरूनी प्रकाश जो घर के भीतर होता है। बाह्य रोशनी ज्यादातर स्ट्रीट लाइट या घर के बाहर लगे रोशनी के उपकरणों द्वारा होता है। स्ट्रीट लाइट की व्यवस्था तथा बनावट कुछ इस तरह हो जो रोशनी को सिर्फ उपयोग सीमा में सिर्फ नीचे की तरह केंद्रित करे तो बहुत हद तक प्रकाश प्रदूषण पर काबू पाया जा सकता है। जहाँ तक घरों के बाहर रोशनी का सवाल है, इसे भी उपरोक्त व्यवस्था को ध्यान में रखकर ही लगाना चाहिए। इनका प्रयोग भी उतना ही हो जितना जरूरी है। यह भी ध्यान रहे की यह सीधा आपके पड़ोस की ओर न हो। घर के भीतर की प्रकाशीय व्यवस्था आपके मूड और समय के अंतर्गत हो। नीली रौशनी (LED लाइट) से ज्यादा 'वार्म लाइटिंग' को प्रधानता दें। समय पर बत्ती बंद कर अँधेरे या बहुत कम रोशनी में सोये। प्रकाश प्रदूषण का मानव शरीर पर दीर्घकालिक प्रभाव उतना ही है जितना अन्य हानिकारक घटकों का, इसलिए इससे बचने की कोशिश करें।

आज हमें अंधकार की जरूरत है। जगमगाहट, चकाचौंध, कौंधने वाली चमक, 'दैदिप्तिमान व्योम' यह सुनने और देखने में भले ही बड़े अच्छे लगते हों, परन्तु शनैः-शनैः यह हमसे बहुत कुछ छीन भी रहा है। विडम्बना यह है की 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने की प्रार्थना है परन्तु अज्ञान रुपी अंधकार से हम अभी प्रकाश में तो हैं, लेकिन यह फिर से हमारी अज्ञानता है। दरअसल जरुरत है कुछ आवश्यक 'अंधकार' की जिससे अंधकार और प्रकाश का संतुलन बना रहे।

vijonkumarpanday@gmail.com

❑❑❑

अंतरिक्ष अन्वे ण के कार्य और योजनाएँ

अंतरिक्ष तकनीकों का प्रयोग करके ब्रह्माण्ड की खोज और उसका अन्वेषण करने को अंतरिक्ष अन्वेषण कहते हैं। आज इस क्षेत्र में बहुत अधिक कार्य किये जा रहे है तथा इस सन्दर्भ में नित नये–नये समाचार सुनने मे आ रहे हैं। प्रस्तुत लेख में अंतरिक्ष अन्वेषण के क्षेत्र में किये गये हालियाँ कार्यों का वर्णन है।

इसरो की अगले साल एक साथ 68 उपग्रह प्रमोचित करने की योजना

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) अगले साल के प्रारंभ में एक ही मिशन में रिकार्ड 68 उपग्रहों के प्रक्षेपण की योजना बना रहा है। इसरों की व्यवसायिक इकाई एंट्रिक्स के सी एम डी राकेश शशि भूषण ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा, ''वैसे तो प्रक्षेपण कई होने हैं लेकिन यह एक खास प्रक्षेपण है जिसमें हम लगभग 68 उपग्रहों को भेजने की योजना बना रहे हैं। यह भी एक प्रक्षेपण है जिसे अंतिम रूप दिया जाना है।" अधिकारियों के मुताबिक यदि सब कुछ ठीक रहा तो अगले 6-7 महीनों में यह प्रक्षेपण हो सकता है। ये उपग्रह वास्तव में दूसरे देशों के नैनो उपग्रह होंगे। अपने अंतरिक्ष कार्यक्रम में रिकार्ड बनाते हुए इसरो ने जून 2016 में एक मिशन में 20 उपग्रहों को प्रक्षेपित किया था।

इसरो ने स्क्रैमजेट इंजन का सफल परीक्षण

भारत ने राकेट प्रक्षेपण के साथ स्वदेशी तकनीक से निर्मित स्क्रैमजेट इंजन का सफल परीक्षण किया। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा,''यह मिशन सफल रहा। राकेट की उड़ान के दौरान दो स्क्रैमजेट इंजनों का परीक्षण किया गया।'' अधिकारी के अनुसार निर्धारित समयानुसार सुबह 6 बजे दो स्टेज/इंजन वाले आर एच-560 साउंडिंग राकेट ने आंध्र प्रदेश के श्री हरिकोटा स्थित सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र (सीडीएससी) से उड़ान भरी। दोनों इंजन राकेट की दीवाल से चिपके हुए थे और सामान्य रूप से जब राकेट 11 कि.मी. की ऊँचाई पर पहुँचता है तो स्क्रैमजेट इंजन श्वास लेना शुरू करते हैं। स्क्रैमजेट इंजन राकेट की उड़ान के दौरान 55 सेकण्ड तक चालू रहे और 6 सेकेण्ड में इंजनों का परीक्षण किया गया। स्क्रैमजेट इंजनों का प्रयोग तभी किया जाता है जब राकेट उड़ान के दौरान वायुमंडल में होता है। इससे ईंधन के साथ जाने वाले आक्सीकारक की मात्रा घटा कर प्रक्षेपण लागत घटाने में मदद मिलेगी।
इसरो ने आगे बताया कि ''इस परीक्षण में महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियों का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया गया। इसमें सुपरसोनिक गति पर लपट

को बनाये रखना, हवा लेने के तंत्र और ईंधन इंजेक्शन प्रणालियों के प्रदर्शन शामिल थे।" स्क्रैमजेट इंजन को इसरो ने विकसित किया है। इसमें ईंधन के रूप में हाइड्रोजन गैस का प्रयोग किया जाता है। इस परीक्षण के लिए इसरो के उन्नत प्रौद्योगिकी यान ए.टी.वी. का प्रयोग किया गया। उड़ान भरने के दौरान इस राकेट का भार 3277 कि.ग्रा. था। इसरो के अनुसार ''स्क्रैमजेट इंजन का परीक्षण करने वाला भारत विश्व का चौथा देश है।" नासा ने वर्ष 2004 में इसका परीक्षण किया था। इससे पहले भारत ने वर्ष 2006 में स्क्रैमजेट इंजन का धरती पर परीक्षण किया था।

इसरो द्वारा एक साथ 68 उपग्रह प्रमोचन की भावी योजना

स्क्रैमजेट इंजन के सफल परीक्षण के लिए राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने इसरो को बधाई दी और कहा, ''भविष्य के स्क्रैमजेट राकेट इंजन के परीक्षण के लिए इसरो को हार्दिक बधाई। भारत को आप पर गर्व है।" इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने भी इसरो को बधाई दी और कहा, ''स्क्रैमजेट राकेट इंजन का सफल परीक्षण हमारे वैज्ञानिकों की कड़ी मेहनत और उत्कृष्टता का प्रमाण है। इसरो को बधाई। हमने बार-बार देखा है कि हमारे वैज्ञानिकों एवं अंतरिक्ष कार्यक्रम ने कैसे भारत को गौरवान्वित किया है।" इसरो ने यह भी बताया कि उसके डिजाइन किये गये स्क्रैमजेट इंजनों में ईंधन के रूप में हाइड्रोजन का प्रयोग होता है और ये आक्सीकारक के रूप में वायुमंडल की वायु से ऑक्सीजन लेते हैं। सामान्य तौर पर राकेट इंजनों में दहन के लिए ईंधन और आक्सीकारक दोनों होते है। स्क्रैमजेट इंजनों का प्रयोग इसरो के पुनः प्रयोज्यीय प्रमोचन वेहिकल (आर.एल.वी) को हाइपरसोनिक गति से संचालित करने के लिए भी किया जायेगा।

मंगल ग्रह के एक वर्षीय सिमुलेशन परीक्षण मिशन की समाप्ति

मंगल ग्रह में मानव को भेजने का एक महान सपना पूरा करने के लिए अमरीकी अंतरिक्ष संस्था ने हाल में एक परीक्षण किया तथा यह परीक्षण पृथ्वी पर हवाई द्वीप में किया गया जहाँ पर 6 लोगों को एकान्त वास में एक डोम के अन्दर एक साल के लिए रखा गया। यह डोम 1000 वर्ग फुट क्षेत्रफल वाला था जो हवाई के मौना लोआ पहाड़ पर बनाया गया था तथा इस मिशन में भाग लेने वाले वैज्ञानिक थे कार्मेल जान्सन, क्रिस्टिएन हेनिके, शेयना ई गिफर्ड, अन्ड्रूज़ेज स्टीवार्ड, साइप्रिएन वर्सेक्स और ट्रिस्टान बैसिंग्टवेटे। कार्मेल जान्सन एक मृदा वैज्ञानिक हैं, गिफर्ड वांतरिक्ष भौतिकी एवं न्यूरो विज्ञान पर काम कर चुके हैं, स्टीवार्ट वायुयान पायलट हैं, वर्सेक्स रोम विश्वविद्यालय के डाक्ट्रेट विद्यार्थी हैं तथा ट्रिस्टान आर्कीटेक्चर में डाक्ट्रेट कर रहे हैं। ये 6 वैज्ञानिक इस डोम में वैसे ही रहे जैसे वे अंतरिक्ष यात्री के रूप में मंगल ग्रह के भावी मानवयुक्त अभियानों में रहेंगे। इस परीक्षण का उद्देश्य उन चुनौतियों का पता लगाना था जो मानवयुक्त मंगल ग्रह मिशन मंगल ग्रह में झेलेगा। ये 6 लोग डोम के अन्दर एक टीम के रूप रहे तथा खाना, पीना, रहना, परीक्षण कार्य करना एवं समस्याओं को उसी प्रकार झेला जैसा भावी अंतरिक्ष यात्री डीप अंतरिक्ष अभियानों में झेलेंगे। इस परीक्षण में अंतरिक्ष यात्री अपने परिवार जनों से केवल 20 मिनट के विलम्बित संचार प्रक्रिया से बात कर सकते थे (जैसा कि मंगल ग्रह से बात करने में विलम्ब होगा) तथा डोम से बाहर आना हो तो समुचित स्पेस सूट पहनकर ही बाहर आ सकते थे तथा बाहर जाने के लिए उन्हें भूनियंत्रण केन्द्र की अनुमति लेनी पड़ती थी। इस संदर्भ में भविष्य में कुछ और भी परीक्षण किये जायेंगे। इस परीक्षण के प्रमुख जाँचकर्ता तथा हवाई विश्वविद्यालय के प्रोफेसर किम बिन्स्टेड के अनुसार जितना लम्बा मिशन होता जायेगा उतनी अच्छी तरह से हम अंतरिक्ष यात्रा के जोखिमों को समझते जायेंगे। बिन्स्टेड के अनुसार, ''हमें आशा है कि यह मिशन हमारी दीर्घकालीन अंतरिक्ष अभियानों की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक गणकों की दृष्टि की समझ को बढायेगा तथा नासा के द्वारा अंतरिक्ष यात्री दल के चयन में सहायक होगा।" यह एक वर्षीय मिशन 29 अगस्त 2016 को समाप्त हो गया। इसका प्रारंभ 29 अगस्त 2015 को हुआ था। इसके बाद दो और भी इस तरह के मिशन सम्पन्न होंगे जिसके लिए नासा ने आवेदन मांगना प्रारंभ कर दिया है।

इसरो ने इन्सैट-3डी आर उपग्रह से प्राप्त प्रथम चित्र को रिलीज किया

8 सितम्बर 2016 को भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने जी एस एल वी मार्क-II प्रमोचन राकेट से मौसम विज्ञानी उपग्रह इन्सैट-3डी आर का प्रमोचन किया। 15 सितम्बर 2016 को इसरो ने इस उपग्रह के द्वारा लिए गये पृथ्वी के चित्र को जन सामान्य के लिए रिलीज किया। यद्यपि यह चित्र ब्लैक एण्ड ह्वाइट में था लेकिन विज्ञान और अंतरिक्ष विज्ञान प्रेमियों ने इसकी काफी प्रशंसा की तथा 683 बार ट्वीट किया।

मंगल ग्रह का एक वर्षीय सिमुलेशन परीक्षण मिशन

19 सितम्बर को इसरो ने पृथ्वी का रंगीन चित्र (इसी उपग्रह के द्वारा लिया गया) रिलीज किया। इस उच्च कोटि के उपग्रह में मौसम विज्ञानी सेवाओं को उच्चस्तरीय बनाने के लिए इसमें प्रतिबिम्बन तंत्र और वायुमंडलीय साउन्डर तंत्र लगा हुआ है। इन्सैट-3 डी आर के सफल प्रमोचन पर भारत के राश्ट्रपति महामहिम प्रणब मुखर्जी ने इसरो चेयरमैन एस. किरण कुमार को बधाई दी और कहा, ''जी एस एल वी-एफ05 के सफल प्रमोचन पर आपको और आपकी टीम को बधाई।"

26 सितम्बर को इसरो के द्वारा स्कैटसैट और कुछ अन्य उपग्रहों का प्रमोचन

बुधवार को इसरो के प्रवक्ता ने बताया कि यह समुद्री और मौसम विज्ञानी अध्ययन के लिए स्कैटसैट-1 उपग्रह का प्रमोचन करेगा तथा इसके साथ सात सहयात्री उपग्रह सूर्य समकालिक कक्षा में भेजे जायेंगे। अपनी 37वीं उड़ान में ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचन राकेट पी. एस.एल.वी.-सी35 उपर्युक्त उपग्रहों का प्रमोचन करेगा। 377 कि.ग्रा. उपग्रह के साथ प्रमोचित होने वाले विदेशी उपग्रह अल्जीरिया, कनाडा और अमरीका के होंगे तथा दो अन्य उपग्रह भारतीय विश्वविद्यालयों से होंगे। इसरो प्रवक्ता के अनुसार स्कैटसैट-1 उपग्रह 720 कि.मी. वाली ध्रुवीय सूर्य समकालिक कक्षा में भेजा जायेगा जब कि दो भारतीय विश्वविद्यालयों के उपग्रह तथा 5 विदेशी उपग्रह 670 कि.मी. दूरी की ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किये जायेंगे। पी.एस.एल.वी.-सी35 का प्रमोचन सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र के प्रथम प्रमोचन पैड से किया जायेगा तथा यह पी.एस.एल.वी. राकेट के एक्स एल स्वरूप की 15वीं उड़ान होगी जिसमें ठोस ईंधन वाले स्ट्रैप आन मोटरों का प्रयोग किया जायेगा।

दो भारतीय विश्वविद्यालयों के उपग्रहों के नाम हैं- प्रथम (इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ-मुंबई) तथा पिसैट (पेस विश्वविद्यालय बेंगलूरू)। सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र के निदेशक पी कून्हीकृष्णन के अनुसार, ''इस मिशन की तैयारी पूरी तेजी से चल रही है जिससे पी.एस.एल.वी.-सी35 का प्रमोचन 26 सितम्बर को किया जा सके। हमने इस मिशन के विभिन्न नीतभारों को दो भिन्न कक्षाओं में भेजने की योजना बना ली है। एक पी.एस.एल.वी. मिशन के द्वारा बहुकक्षीय प्रमोचन का यह प्रथम मिशन होगा जिसमें 'पीएस 4' पुनः प्रारंभ तरीके का प्रयोग किया जायेगा।" वैसे तो पी.एस.एल.वी. ने अनेक सफल प्रमोचनों को अंजाम दिया है लेकिन यह पहली बार ऐसा होगा कि प्रमोचन प्रक्रिया विभिन्न उपग्रहों को विभिन्न कक्षाओं में स्थापित करेगी।

चीन ने अपने दूसरे अंतरिक्ष स्टेशन टायनगाँग-2 का प्रमोचन किया

चीन ने अपने दूसरे अंतरिक्ष स्टे'ान टायनगाँग-2 का प्रमोचन 15 सितंबर 2016 को कर दिया है। इसका प्रमोचन लाँगमार्च-7 राकेट के द्वारा उत्तरी चीन के गोबी रेगिस्तान स्थित जियाकुन उपग्रह प्रमोचन केन्द्र से किया गया। योजना के अनुसार चीन दो अंतरिक्ष यात्रियों के साथ भोन्जू अंतरिक्ष यान अक्टूबर 2016 में भेजेगा जो (अंतरिक्ष यान) इससे जुड़ेगा। अंतरिक्ष यात्री इस चीनी अंतरिक्ष स्टेशन मे दो महीने रहेंगे। टायगाँग-2 जिसके नाम का अर्थ है 'स्वर्गिक महल', को चीन के भावी मंगल ग्रह मि ान की एक कड़ी माना जा रहा है। टायनगाँग-2 मॉड्यूल का प्रयोग तंत्रों और प्रक्रियाओं की जाँच के लिए किया जायेगा। प्रारंभ मे टायनगाँग-2 का प्रमोचन वर्ष 2015 मे टायनगाँग-1 को रिप्लेश करने के लिए किया जाना था जिसका (टायनगाँग-1) प्रमोचन सितम्बर 2011 में किया गया था। टायनगाँग-2 स्टेशन की लम्बाई 14. 4 मीटर, इष्टतम व्यास 4.2 मीटर और भार 8600 कि.ग्रा. है। पृथ्वी से इसकी दूरी 400 कि.मी. है। इसमें 2 अंतरिक्ष यात्री रह सकेंगे। अप्रैल 2017 मे चीन का प्रथम कार्गो यान टायनजू-1 इस अंतरिक्ष स्टेशन से जुड़ेगा।

जापान की हिनोडे सौर प्रेक्षणशाला की दसवीं वर्षगाँठ

22 सितम्बर 2006 से जापान की हिनोडे प्रेक्षणशाला लगातार सूर्य का प्रेक्षण कर रही है। 22 सितम्बर 2016 को इसने अपनी दसवीं वर्ष गाँठ मनाई। हिनोडे प्रेक्षणशाला जापान वांतरिक्ष अनुसंधान संस्था (जाक्सा) और अमरीकी अंतरिक्ष संस्था नासा का एक संयुक्त अभियान है जिसने हमारे अपने स्टार सूर्य और कुछ अन्य ब्रह्माण्डीय पिन्डों की अद्भुत प्रतिबिम्बकी एवं जानकारी प्रदान की है। हिनोडे के अंतरिक्ष कक्षा में 10 वर्ष तक रहने के उपलक्ष्य में जाक्सा और नासा ने एक छोटी सी फिल्म रिलीज की है। नासा के मार्शल अंतरिक्ष उड़ान केन्द्र के हिनोडे परियोजना के वैज्ञानिक सैब्रीना सैवेज ने इस मौके पर कहा, ''सूर्य विशाल और अद्भुत तारा है तथा साथ ही साथ हमारे सौर तंत्र की सर्वोत्तम भौतिकी प्रयोगशाला है। पिछले 10 वर्षों में हिनोडे ने सूर्य को एक परिवर्तनीय स्टार के रूप में समझने का प्रयास किया है।"

हिनोडे ने सौर प्रस्फोटो से लेकर इसकी नाजुक गतिविधियों तक सभी को प्रतिबिम्बित किया है जिससे वैज्ञानिक इसकी विभिन्न घटनाओं का वृहत रूप से अध्ययन कर सके। चूँकि अभी तक हिनोडे प्रेक्षणशाला के सभी उपकरण अच्छी तरह से काम कर रहे हैं, इसलिए इस प्रेक्षणशाला की टीम को यह आशा है कि यह अभी सूर्य की और अधिक गहराई से जानकारी प्रदान करेगी।

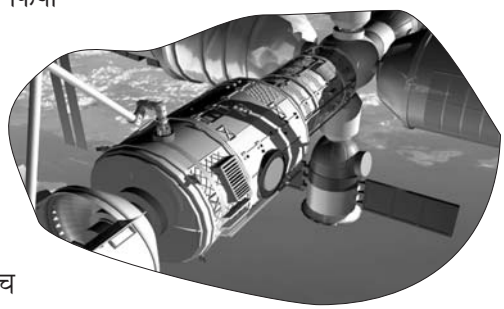

टायनगाँग-2 अंतरिक्ष स्टेशन

जी सैट-18 के प्रमोचन के लिए एरियन-5 राकेट की तैयारी

4 अक्टूबर 2016 को भारतीय संचार उपग्रह जी सैट-18 के प्रमोचन की तैयारियाँ फ्रेंच गुएना कोरू में तेजी से चल रही है जिसका प्रमोचन एरियन स्पेस कम्पनी के एरियन-5 राकेट के द्वारा किया जाना है। इसके साथ एक अन्य उपग्रह स्काई मस्टर-II प्रमोचित किया जायेगा। ये दोनों उपग्रह स्पेस पोर्ट की नीतभार सुविधा में पहुँच चुके हैं। दोनों ही संचार उपग्रह है। जी सैट-18 में 24 सी-बैन्ड, 12 अपर एक्सटेन्डेड सी-बैन्ड, 12 कू-बैन्ड ट्रान्सपान्डर तथा 2 कू-बीकन ट्रान्सपान्डर है। स्काई मस्टर-II में उच्च क्षमता वाले का बैन्ड ट्रान्सपान्डर है। जी सैट-18 उपग्रह को पहले 12 जुलाई 2016 को जापान के सुपरबर्ड-8 उपग्रह के साथ प्रमोचित किया जाना था लेकिन ट्रान्सपोर्टेशन के दौरान सुपरबर्ड-8 उपग्रह में क्षति हो जाने से प्रमोचन विलम्बित हुआ। स्काई मस्टर-II आस्ट्रेलिया का संचार उपग्रह है। जी सैट-18 को अंतरिक्ष में 74 डिग्री पूर्व देशान्तर पर स्थापित किया जायेगा।

चीन के प्रथम स्टेशन टायनगाँग-1 के 2017 में पृथ्वी पर गिरकर नष्ट होने की संभावना

अगले वर्ष चीन का प्रथम अंतरिक्ष स्टेशन टायनगाँग-1 पृथ्वी में गिरकर नष्ट होगा। इसका प्रमोंचन 29 सितम्बर 2011 को लाँग मार्च राकेट के द्वारा किया गया था। इसकी लम्बाई 10.4 मीटर, व्यास 3.35 मीटर, भार 8506 कि.ग्रा. तथा इसका दाबयुक्त आयतन 15 घन मीटर है। इसकी पृथ्वी से निम्नतम दूरी (पेरिजी) 363 कि.मी. तथ इष्टतम दूरी 381 कि.मी. है और यह 91.85 मिनट में पृथ्वी का एक चक्कर लगाता है। ऐसी आशा है कि इसके पृथ्वी पर गिरने से किसी प्रकार की क्षति नहीं होगी। चीनी अंतरिक्ष संस्था के प्रवक्ता के अनुसार, ''हमारी गणना और विश्लेषण के अनुसार गिरते समय इसके अधिकांश भाग जल जायेंगे।" वर्तमान में यह अंतरिक्ष स्टेशन काम कर रहा है तथा उपर्युक्त ऊँचाईयों पर पृथ्वी के चक्कर लगा रहा है। लेकिन अब यह चीनी अंतरिक्ष संस्था के नियंत्रण से बाहर हैं। अंतरिक्ष संस्था ने यह भी कहा कि पृथ्वी पर इसके गिरने के अपडेट आवश्यकतानुसार जारी किये जायेंगें। यह बात चीन के मानवयुक्त अंतरिक्ष इंजीनियरिंग आफिस के उपनिदेशक वूपिंग ने कही। इस अंतरिक्ष स्टेशन के प्रचालन जीवनकाल में 3 अंतरिक्ष यान-शेंजू-8, भोंजू-9, भोंजू-10 इससे आकर जुड़े थे। बाद के दो मिशन मानवयुक्त मिशन थे तथा प्रत्येक में तीन-तीन अंतरिक्ष यात्री थे। टायनगाँग-1 ने मार्च 2016 से निर्धारित आंकड़े पृथ्वी को भेजना बंद कर दिया जों कि इस मिशन की समाप्ति की ओर इशारा करता है। लेकिन इसका उत्तराधिकारी टायनगाँग-2 अंतरिक्ष स्टेशन 15 सितम्बर 2016 को अंतरिक्ष में भेजा जा चुका है।

पिछले 136 सालों में अगस्त 2016 सबसे ज्यादा गर्म वर्ष रहा

बीते 136 सालों से जब से मौसम संबंधी जानकारी का रिकार्ड आधुनिक तरीके से रखा जा रहा है तब से अगस्त 2016 सर्वाधिक गर्म महीना दर्ज किया गया है। अमरीकी अंतरिक्ष संस्थ नासा ने यह जानकारी देते हुए बताया कि अगस्त 2016 की यह गर्मी पिछलें 11 माह से चली आ रही थी अर्थात् बीते बरस अक्टूबर माह से तापमान अपनी भृकुटी चढ़ाये रहा। मौसमी तापमान संबंधी चक्र में आमतौर पर जुलाई में सर्वाधिक गर्मी दर्ज की जाती है। इस बार जुलाई 2016 ने सर्वाधिक गर्म जुलाई का रिकार्ड भी बनाया। नासा के गोडार्ड इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस स्टडीज (जी.आई.एस.एस.) ने वैश्विक तापमान का मासिक विश्लेषण किया और बताया कि अगस्त 2014 की तुलना में अगस्त 2016 का तापमान 0.16 डिग्री सेल्सियस अधिक था। पिछला महीना वर्ष 1951 से 1980 के बीच रहे अगस्त के तापमान से 0.98 डिग्री सेल्सियस अधिक दर्ज किया गया।

सूर्य का अत्यधिक गहराई से प्रेक्षण के लिए नासा की आइरिस प्रेक्षणशाला का कार्यकाल बढाया गया

सूर्य के निम्न वायुमंडल के विस्तृत प्रतिबिम्बन (जिनकी अंतरिक्ष से रिकार्डिंग पहली बार संभव हो सकी) करने वाली तथा लाकहीड मार्टिन

स्कैट सैट-1 का प्रमोचन

कम्पनी के द्वारा नासा के लिए निर्मित और प्रचालित इन्टरफेस रीजन इमैजिंग स्पेक्ट्रोग्राफ (आइरिस-आई.आर.आई.ए.) ने अंतरिक्ष विज्ञान की विस्मयकारी परिघटनाओं की जानकारी देने में काफी समय लगाया है। इस कम्पनी को हाल में 19.4 मिलियन डालर का एक और ठेका दिया गया है जिसके अन्तर्गत यह इस कक्षीय प्रयोगशाला को सितम्बर 2018 तक चलायमान रखेगी तथा वाद मे ठेके की अवधि सितम्बर 2019 तक की जा सकती है। लाकहीड मार्टिन के उच्चतर तकनीकी केन्द्र में इस मिशन को वैज्ञानिक नेतृत्व प्रदान करने वाले वैज्ञानिक डॉ.बार्ट डे पोन्टी बताते हैं, ''आज से 3 वर्ष पहले प्रमोचित आइरिस ने सूर्य के स्पेक्ट्रमी मापन के 24 मिलियन से भी अधिक प्रतिबिम्ब लिये हैं जिस पर 115 से भी अधिक वैज्ञानिक भाोध पत्र प्रकाशित किये गये हैं। परियोजना के नवीन एक्सटेन्सन में आइरिस विस्तृत रेंज की परिघटनाओं का अध्ययन करेगी जिसमें शामिल चीजे होंगी-तीव्र सौर पवन के स्रोत क्षेत्र तथा आवेशित कणों की धारा जो लगातार सूर्य से 1000 कि.मी. प्रति से. की गति से निकलती है और पृथ्वी के इर्द गिर्द के अंतरिक्ष क्षेत्र को भर देती है। नासा के लाकहीड मार्टिन और विश्व के अन्य संस्थानों के वैज्ञानिकों ने आइरिस प्रेक्षणशाला के द्वारा अत्यधिक विस्मयकारी खोजे की है जिनमें प्रमुख हैं- सौर वायुमंडल कैसे गर्म होता है तथा सौर प्रज्वाल कैसे उद्दीपित होते हैं और चुम्बकीय ऊर्जा निकालते हैं। नासा लाकहीड मार्टिन कम्पनी के द्वारा निर्मित और प्रचालित अनेक सौर विज्ञान कार्यक्रमों को सपोर्ट प्रदान करता है।

मंगल ग्रह के भूकम्प से पैदा हो सकती है जीवन के लिए पर्याप्त हाइड्रोजन

एक नये अध्ययन में दावा किया गया है कि भूकम्प के दौरान चट्टानों के आपस में घर्षण के कारण बनी हुई चट्टानों में हाइड्रोजन पर्याप्त मात्रा में होती है। मंगल ग्रह पर इस तरह की भूकम्पीय गतिविधि जीवन के लिए जरूरी पर्याप्त हाइड्रोजन का निर्माण कर सकती है। शोधकर्ताओं ने स्काटलैन्ड के तट पर हेब्राइड्स की सक्रिय फाल्ट लाइनों के आस-पास बनी चट्टानों की संरचना का अध्ययन किया था। इन शोधकर्ताओं में अमरीका के येल विश्वविद्यालयों के शोधकर्ता भी शामिल थे। इस अध्ययन के प्रथम लेखक और येल के भू विज्ञानी सीन मैकमोहन ने कहा, ''पिछले अध्ययन से यह पता चला था कि जब भूकम्प के दौरान चट्टाने आपस में टकराती और टूटती हैं तो हाइड्रोजन पैदा होती है। हमारा ऑकलन कहता है कि सक्रिय फाल्ट लाइनों के आस-पास सूक्ष्म जीवों के विकास के लिए पर्याप्त हाइड्रोजन होती है।" मानव और अन्य जानवर अपनी ऊर्जा मुख्यतः ऑक्सीजन और शर्करा के बीच की क्रिया से लेते हैं वहीं बैक्टीरिया ऊर्जा लेने के लिए विभिन्न वैकल्पिक क्रियाओं का प्रयोग करते हैं।

नासा का पहला क्षुद्र ग्रह मिशन प्रमोचन के लिए तैयार

क्षुद्र ग्रह ''बेन्नू'' मे जीवन की संभावनाओं का पता लगाने के लिए नासा का पहला मिशन प्रमोचन 9 सितम्बर 2016 को सम्पन्न हुआ। क्षुद्र ग्रह का अध्ययन करने के बाद यह ७ वर्श बाद पृथ्वी पर वापस आयेगा। फ्लोरिडा स्थित केप केनेवेरल एयरफोर्स स्टेशन से मानव रहित अंतरिक्ष यान ओसीरिक्स-रेक्स को एटलस वी राकेट से प्रक्षेपित किया गया। यह यान एक साल तक सूर्य का चक्कर लगायेगा तथा उसके बाद पृथ्वी के समीप स्थित बेन्नू क्षुद्र ग्रह की ओर बढेगा। 2110 कि.ग्रा. वाला यह अंतरिक्ष यान 2018 तक बेन्नू पहुँचेगा। अत्याधुनिक उपकरणों से लैस ओसीरिस-रेक्स कुछ समय के लिए क्षुद्र ग्रह पर भी उतरेगा। अपनी रोबोटिक भुजा की मदद से यह क्षुद्र ग्रह की सतह पर चट्टानों के खनिज तत्वों के नमूने एकत्र करेगा। इसके बाद यह यान 2023 में धरती पर लौट आयेगा। अभियान में शामिल एरिजोना विश्वविद्यालय की डी.लॉरेटा ने बताया कि मिशन का उद्देश्य क्षुद्र ग्रह पर वातावरण और उसकी संरचना के विशय में सही जानकारी जुटाना है।

ksshukla@hotmail.com

❑❑❑

क्रायोजेनिक तकनीक में आत्मनिर्भरता

शशांक द्विवेदी

जीएसएलवी एफ 05 के इस सफल प्रक्षेपण के साथ ही भारत विश्व का ऐसा छठा देश बन गया, जिसके पास अपना देसी क्रायोजेनिक इंजन है। अमेरिका, रूस, जापान, चीन और फ्रांस के पास पहले से ही यह तकनीक है। क्रायोजेनिक इंजन तकनीक से लैस चुनिंदा राष्ट्रों के क्लब में शामिल होने के बाद भारत को अपने भारी उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए किसी अन्य देश पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। इसरो अब वह दूसरे देशों के भारी उपग्रहों का प्रक्षेपण कर और विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकेगा।

लगभग 20 साल की कड़ी मेहनत और कई असफल अभियानों के बाद अब कहा जा सकता है कि भारत क्रायोजेनिक तकनीक में आत्मनिर्भर हो गया है। इसरो ने देश में निर्मित क्रायोजेनिक इंजन के जरिये मौसम उपग्रह इनसैट-3 डीआर को जीएसएलवी-एफ 05 के माध्यम से सफलतापूर्वक प्रक्षेपित कर दिया। यह मिशन जीएसएलवी की 10वीं उड़ान थी और इसका भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के लिए खासा महत्व है क्योंकि यह स्वदेशी 'क्रायोजेनिक अपर स्टेज' वाले रॉकेट की पहली परिचालन उड़ान है। पहले, क्रायोजेनिक स्टेज वाले जीएसलवी के प्रक्षेपण 'विकासात्मक' चरण के तहत होते थे। आंध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा स्थित सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र से प्रक्षेपित 49.1 मीटर लंबा यह रॉकेट 2211 किलोग्राम वजनी अत्याधुनिक और सबसे बड़े मौसम उपग्रह इनसैट-3डीआर को उसकी वांछित कक्षा में स्थापित करने में कामयाब रहा।

जीएसएलवी एफ05 के इस सफल प्रक्षेपण के साथ ही भारत विश्व का ऐसा छठा देश बन गया, जिसके पास अपना देसी क्रायोजेनिक इंजन है। अमेरिका, रूस, जापान, चीन और फ्रांस के पास पहले से ही यह तकनीक है। क्रायोजेनिक इंजन तकनीक से लैस चुनिंदा राष्ट्रों के क्लब में शामिल होने के बाद भारत को अपने भारी उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए किसी अन्य देश पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। इसरो अब वह दूसरे देशों के भारी उपग्रहों का प्रक्षेपण कर और विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकेगा। इनसैट-3 डीआर को इस तरह से तैयार किया गया है कि इसका जीवन 10 साल का होगा। यह पहले मौसम संबंधी मिशन को निरंतरता प्रदान करेगा तथा भविष्य में कई मौसम, खोज और बचाव सेवाओं में क्षमता का इजाफा करेगा।

जीएसएलवी ऐसा मल्टीस्टेज रॉकेट होता है जो दो टन से अधिक वजनी उपग्रह को पृथ्वी से 36000 कि.मी. की ऊँचाई पर भू स्थिर कक्षा में स्थापित कर देता है ,जो विषुवत वृत्त या भूमध्य रेखा के ऊपर होता है। ये अपना कार्य तीन चरण में पूरा करते हैं। इनके आखिरी यानी तीसरे चरण में सबसे अधिक बल की जरूरत पड़ती है। रॉकेट की यह जरूरत केवल क्रायोजेनिक इंजन ही पूरा कर सकते हैं। इसलिए बगैर क्रायोजेनिक इंजन के जीएसएलवी रॉकेट बनाया जा सकना मुश्किल होता है।

कई नाकामियों के बाद मिली सफलता

इससे पहले स्वदेशी तकनीक से विकसित क्रायोजेनिक इंजन युक्त जीएसएलवी के मात्र दो प्रक्षेपण सफल रहे थे। जनवरी 2014 में जीएसएलवी डी-5 ने संचार उपग्रह जीसैट-14 को और अगस्त 2015 में जीएसएलवी डी-6 ने अत्याधुनिक संचार उपग्रह जीसैट-6 को सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किया था।

क्रायोजेनिक इंजन विकसित करने में भारतीय वैज्ञानिकों की लगभग बीस वर्षों की मेहनत रंग लाई है। 2001 से ही देसी क्रायोजेनिक इंजन के माध्यम से जीएसएलवी का प्रक्षेपण इसरो के लिए एक गंभीर चुनौती बना हुआ था। जीएसएलवी के कई परीक्षणों में हमें असफलता मिल चुकी है इसलिए ये कामयाबी खास है ।

क्रायोजेनिक रॉकेट इंजन

असल में जीएसएलवी में प्रयुक्त होने वाला द्रव्य ईंधन इंजन में बहुत कम तापमान पर भरा जाता है, इसलिए ऐसे इंजन क्रायोजेनिक रॉकेट इंजन कहलाते हैं। इस तरह के रॉकेट इंजन में अत्यधिक ठंडी और द्रवित गैसों को ईंधन और ऑक्सीकारक के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस इंजन में हाइड्रोजन और ईंधन क्रमश ईंधन और ऑक्सीकारक का कार्य करते हैं। ठोस ईंधन की अपेक्षा यह कई गुना शक्तिशाली सिद्ध होते हैं और रॉकेट को बूस्ट देते हैं। विशेषकर लंबी दूरी और भारी रॉकेटों के लिए यह तकनीक आवश्यक होती है।

क्रायोजेनिक इंजन के थ्रस्ट में तापमान बहुत ऊँचा (2000 डिग्री सेल्सियस से अधिक) होता है। अत ऐसे में सर्वाधिक प्राथमिक कार्य अत्यंत विपरीत तापमानों पर इंजन व्यवस्था बनाए रखने की क्षमता अर्जित करना होता है। क्रायोजेनिक इंजनों में -253 डिग्री सेल्सियस से लेकर 2000 डिग्री सेल्सियस तक का उतार-चढ़ाव होता है, इसलिए थ्रस्ट चैंबरों, टर्बाइनों और ईंधन के सिलेंडरों के लिए कुछ विशेष प्रकार की मिश्र-धातु की आवश्यकता होती है। फिलहाल भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने बहुत कम तापमान को आसानी से झेल सकने वाली मिश्रधातु विकसित कर ली है।

अन्य द्रव्य प्रणोदकों की तुलना में क्रायोजेनिक द्रव्य प्रणोदकों का प्रयोग कठिन होता है। इसकी मुख्य कठिनाई यह है कि ये बहुत जल्दी वाष्प बन जाते हैं। इन्हें अन्य द्रव प्रणोदकों की तरह रॉकेट खंडों में नहीं भरा जा सकता। क्रायोजेनिक इंजन के टरबाइन और पंप जो ईंधन और ऑक्सीकारक दोनों को दहन कक्ष में पहुँचाते हैं, को भी खास किस्म के मिश्रधातु से बनाया जाता है। द्रव हाइड्रोजन और द्रव ऑक्सीजन को दहन कक्ष तक पहुँचाने में जरा सी भी गलती होने पर कई करोड़ रुपए की लागत से बना जीएसएलवी रॉकेट रास्ते में जल सकता है। इसके अलावा दहन के पूर्व गैसों (हाइड्रोजन और ऑक्सीजन) को सही अनुपात में मिश्रित करना, सही समय पर दहन प्रारंभ करना, उनके दबावों को नियंत्रित करना, पूरे तंत्र को गर्म होने से रोकना जरूरी है।

जीएसएलवी (जियो सिंक्रोनस लॉन्च व्हीकल)

जीएसएलवी ऐसा मल्टीस्टेज रॉकेट होता है जो दो टन से अधिक वजनी उपग्रह को पृथ्वी से 36000 कि.मी. की ऊँचाई पर भू स्थिर कक्षा में स्थापित कर देता है, जो विषुवत वृत्त या भूमध्य रेखा के ऊपर होता है। ये अपना कार्य तीन चरण में पूरा करते हैं। इनके आखिरी यानी तीसरे चरण में सबसे अधिक बल की जरूरत पड़ती है। रॉकेट की यह जरूरत केवल क्रायोजेनिक इंजन ही पूरा कर सकते हैं। इसलिए बगैर क्रायोजेनिक इंजन के जीएसएलवी रॉकेट बनाया जा सकना मुश्किल होता है। दो टन से अधिक वजनी उपग्रह ही हमारे लिए ज्यादा काम के होते हैं इसलिए दुनिया भर में छोड़े जाने वाले 50 प्रतिशत उपग्रह इसी वर्ग में आते हैं। जीएसएलवी रॉकेट इस भार वर्ग के दो तीन उपग्रहों को एक साथ अंतरिक्ष में ले जाकर 36000 कि.मी. की ऊँचाई पर भू-स्थिर कक्षा में स्थापित कर देता है। यही जीएसएलवी रॉकेट की प्रमुख विशेषता है।

इनसैट 3 डीआर में क्या है खास

इनसैट 3डीआर एक अत्याधुनिक मौसम उपग्रह है। मौसम की सटीक जानकारी लेने के लिए इसमें कई आधुनिक सिस्टम लगाये गये हैं। हालांकि मौसम की जानकारी लेने के लिए भारत ने पहले से ही कई सेटेलाइट अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किया है, लेकिन भारत ने अब तक जितने भी मौसम की जानकारी के लिए सेटेलाइट भेजे हैं उनमें इनसैट 3डीआर इसलिए खास है क्योंकि इसमें बेहतर इमेजिंग सिस्टम और एटमॉस्फेयर साउंडर लगाया गया है। इनसैट 3डीआर जमीन से लगभग 70 किलोमीटर की ऊँचाई तक 40 स्तरों पर वायुमंडल का तापमान और 15 किलोमीटर तक 21 स्तरों पर नमी का लेवल सही-सही माप सकता है। इनसैट-3डीआर को इस तरह से तैयार किया गया है कि इसका जीवन 10 साल का होगा। यह पहले मौसम संबंधी मिशन को निरंतरता प्रदान करेगा तथा भविष्य में कई मौसम, खोज और बचाव सेवाओं में क्षमता का इजाफा करेगा।

इनसैट 3डीआर के सफल प्रक्षेपण के बाद मौसम की सटीक जानकारी लेने में अब भारत को विदेशी एजेंसियों पर निर्भर नहीं रहना होगा। अब भारत इस क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो जाएगा। इस उपग्रह की मदद से अब बदलते मौसम की जानकारी यहाँ तक कि रात के वक्त भी बादलों और कोहरों की सटीक जानकारी मिल जाएगी। भारत के पास अपने तीन मौसम विज्ञान-संबंधी उपग्रह कल्पना 1, इनसैट 3ए और इनसैट 3डी पहले से ही है। ये सभी पिछले एक दशक से काम कर रहे हैं। इनसैट 3डी को 2013 में प्रक्षेपित किया गया था। इनसैट-3डीआर इन सबसे ज्यादा अत्याधुनिक है जो मौसम की जानकारी को और भी सटीक बनाएगा । विभिन्न सेवाएँ देने के साथ साथ इनसैट-3डीआर तटरक्षक, भारतीय हवाईअड्डा प्राधिकरण, जहाजरानी एवं रक्षा सेवाओं सहित विभिन्न उपयोगकर्ताओं के लिए इनसैट-3डी द्वारा मुहैया कराई जाने वाली संचालनगत सेवाओं से संबद्ध हो जाएगा।इसमें मध्यम इंफ्रारेड बैंड के जरिए इमेजिंग से रात के समय और बादल व कोहरा होने के समय भी तस्वीरें ली जा सकेंगी। दो थर्मल इंफ्रारेड बैंड इमेजिंग के जरिये इससे समुद्र की सतह (सी सरफेस टेम्परेचर) पर तापमान का सटीकता से अध्ययन किया जा सकेगा। इनसैट 3डी की तरह ही इनसैट 3डीआर में डेटा रिले ट्रांस्पोंडर व सर्च एंड रेस्क्यू ट्रांस्पोंडर है। इसी के साथ इनसैट 3डीआर इसरो द्वारा पहले भेजे गए मौसम विज्ञान से संबंधी मिशन की सेवाओं को आगे बढ़ाने का काम करेगा। इसके अलावा कुछ खोजने और किसी प्रकार के आपदा में बचाव अभियान में भी इस सैटेलाइट का प्रयोग किया जा सकता है। इनसैट 3डीआर में इसरो में टू टन क्लास प्लेटफॉर्म (आई-2के बस) तकनीक का प्रयोग किया गया है। यह कार्बन फाइबर रीइनफोर्स्ड प्लास्टिक से बना है। सैटेलाइट के सोलर पैनल्स से 1700 वॉट पावर का उत्पादन होता है।

इसमें मध्यम इंफ्रारेड बैंड के जरिए इमेजिंग से रात के समय और बादल व कोहरा होने के समय भी तस्वीरें ली जा सकेंगी। दो थर्मल इंफ्रारेड बैंड इमेजिंग के जरिये इससे समुद्र की सतह (सी सरफेस टेम्परेचर) पर तापमान का सटीकता से अध्ययन किया जा सकेगा। इनसैट 3डी की तरह ही इनसैट 3डीआर में डेटा रिले ट्रांस्पोंडर व सर्च एंड रेस्क्यू ट्रांस्पोंडर है। इसी के साथ इनसैट 3डीआर इसरो द्वारा पहले भेजे गए मौसमविज्ञान से संबंधी मिशन की सेवाओं को आगे बढ़ाने का काम करेगा। इसके अलावा कुछ खोजने और किसी प्रकार के आपदा में बचाव अभियान में भी इस सैटेलाइट का प्रयोग किया जा सकता है।

संभावनाओं के नए द्वार

जीएसएलवी एफ 05 प्रक्षेपण को लेकर इसरो के अध्यक्ष ए.एस. किरन कुमार ने कहा रॉकेट का प्रदर्शन आशा के अनुरूप रहा और यह पूरी टीम के जबर्दस्त प्रयासों का परिणाम है। इसरो प्रमुख के अनुसार भविष्य में हम जीएसएलवी के जरिये कई और संचार उपग्रहों का प्रक्षेपण करेंगे साथ ही इस रॉकेट का इस्तेमाल दूसरे चंद्रयान मिशन और जीआइसेट की लांचिंग में भी किया जाएगा। जीएसएलवी की यह सफलता इसरो के लिए बेहद खास है क्योंकि दूरसंचार उपग्रहों, मानव युक्त अंतरिक्ष अभियानों या दूसरा चंद्र मिशन जीएसएलवी के विकास के बिना संभव नहीं था । इस प्रक्षेपण की सफलता से इसरो के लिए संभावनाओं के नए दरवाजें खुलेगे। इनसैट ३डीआर के सफल प्रक्षेपण के बाद मौसम की सटीक जानकारी लेने में अब भारत भी आत्मनिर्भर हो गया है।

dwivedi.shashank15@gmail.com

❑❑❑

दैनिक विज्ञान

मसालों का विज्ञान

डॉ.स्वाति तिवारी

इतिहास गवाह है कि मसालों की दुनिया कितनी पुरानी है, कहते हैं कि ईसा के जन्म से बहुत पहले की बात है कई ग्रीक व्यापारी मसाले और अन्य कीमती चीजें खरीदने के लिए दक्षिण भारत के बाजारों में आया करते थे, रोम देश में भारतीय मसाले, रेशमी वस्त्र, जरी के कढ़ाईदार वस्त्र विलासप्रिय समाज में बहुत लोकप्रिय हुआ करते थे। काली मिर्च सबसे कीमती मसाला हुआ करती थी और एक पौंड जावन्त्री तीन भेड की कीमत के बराबर महँगी होती थी, एक पौंड अदरक एक भेड़ के बराबर हुआ करती थी। काली मिर्च को तब दानों में गिनकर बेचा जाता था।

मसाले हमारे भोजन के स्वाद को दुगना कर देते हैं, यदि मैं कहूँ चटपटा तो सुननेवाला उस स्वाद का अंदाज़ खुद लगा लेता है या कहा जाए खट्टा तो आप उस स्वाद का अहसास करने लगते हैं, इस बात को ध्यान में रखते हुए शायद यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि मसाले क्या होते हैं? सम्पूर्ण विश्व भारतीय मसालों के बारे में जानता है, भारत से अँग्रेजों ने मसालों का ही व्यापार शुरू किया था, हमारी पाक कला में मसाले जान हैं, हमारी शान हैं। ज्यादातर मसाले कृषि उत्पादन हैं किन्तु कुछ एक मसाले प्राकृतिक तरीके से भी मिलते हैं जैसे नमक, सेंधा नमक, काला नमक, पापड़ खार, इत्यादि। मसाले हमारी अर्थव्यवस्था में भी एक बड़ा योगदान देते हैं। भारत सहित दुनिया के कई देश हैं जो मसालों का आयात-निर्यात करते हैं। हमारे लिए साधारण से लगने वाले ये मसाले ना केवल खाद्य सामग्री में स्वाद, रंगत और सुवास बढ़ाते हैं बल्कि ये हमारी आयुर्वेदिक औषधियों, सुगंध उद्योग, कॉस्मेटिक उद्योग में भी बड़ी मात्रा में उपयोग किये जाते हैं। हम जिन्हें चटपटा, जायकेदार कहते हैं अँग्रेजी में उसे स्पायिसिज कहा जाता है। माना जाता है कि विश्व भर में लगभग 69-79 प्रकार के मसाले उगाये जाते हैं। भारतीय भोजन विभिन्न प्रकार की पाक कलाओं का मिश्रण है। इसमें पंजाबी खाना, मारवाड़ी खाना, दक्षिण भारतीय खाना, शाकाहारी खाना, माँसाहारी खाना आदि सभी सम्मिलित हैं। भारतीय भोजन में ये विविधता का एक बहुत बड़ा कारण उसे डाले जाने वाले मसाले हैं और इन सभी मसालों का अपना अलग उपयोग वस्वाद है।

हमारी रसोई के ये मसाले रसोई के वे रत्न हैं जिनके बगैर अच्छे से अच्छा रसोइया बेकार है, सम्पूर्ण भोजन इन्हीं मसालों के कॉम्बिनेशन और मात्रा पर निर्भर होता है कि वह ना केवल स्वादिष्ट बने बल्कि वह स्वास्थ्यवर्धक भी हो। इतिहास गवाह है कि मसालों की दुनिया कितनी पुरानी है, कहते हैं कि ईसा के जन्म से बहुत पहले की बात है कई ग्रीक व्यापारी मसाले और अन्य कीमती चीजें खरीदने के लिए दक्षिण भारत के बाजारों में आया करते थे, रोम देश में भारतीय मसाले, रेशमी वस्त्र,जरी के कढ़ाईदार वस्त्र विलासप्रिय समाज में बहुत लोकप्रिय हुआ करते थे। काली मिर्च सबसे कीमती मसाला हुआ करती थी और एक पौंड जावित्री तीन भेड़की कीमत के बराबर महँगी होती थी, एक पौंड अदरक एक भेड़ के बराबर हुआ करती थी। काली मिर्च को तब दानों में गिनकर बेचा जाता था। भारत में आज भी काली मिर्च, इलायची, अदरक, हल्दी और लाल मिर्च प्रमुख मसाले माने जाते

हैं। इसके अलावा हमारी रसोई में कुछ छोटे मसाले भी महत्वपूर्ण होते हैं जैसे अजवाइन, सौंफ, लहसुन, मैथी, केसर, जायफल, पुदीना, तेजपत्ता जैसे मसाले, उपयोग में आते ही हैं, एक महत्त्वपूर्ण मसाला है हींग, धनिया पावडर और मस्टर्ड राईं-सरसों, वगैरह। इन मसालों का रासायनिक विज्ञान क्या कहता है? इन्हें वैज्ञानिक शब्दावली में क्या कहते हैं? कहाँ उत्पन्न होते हैं, कैसी जलवायु लगती है? हर मसाला अपने-आप में कोई न कोई औषधीय गुण समेटे हुए है। हम वैज्ञानिक दृष्टि से मसलों को वर्गीकृत करें तो कहेंगे... बीज मसाले, पर्ण मसाले, कन्द मसाले, शल्क कन्द मसाले, जड़ मसाले, रस मसाले।

जीरा (क्यूमिन सीड)

सफेद जीरा एक ऐसा मसाला है जिसका उपयोग हम प्रतिदिन करते हैं। अंग्रेजी में इसे क्योंक्यूमिन सीड और वनस्पति विज्ञान में इसे क्युमिनियम साईमिनम कहते हैं यह अम्बेलिफेरी परिवार का सदस्य है, जीरा एक छोटा और पतला वार्षिक पौधा होता है 30-40 सेंटीमीटर कद के इसके पौधे मूलरूप से मिस्त्र और सीरिया, तुर्किस्तान के माने गए हैं, हालाँकि भारत, ईरान, चीन, रूस, जापान, तुर्की में भी यह बड़े पैमाने पर उत्पादित किया जाता है। निर्यात की दृष्टिसे सबसे ज्यादा ईरान देश से होता है। इसका आकार सौंफ से थोड़ा पतला और छोटा होता है पर इसके सूखे बीजों का रंग हल्के पीले धूसर सा होता है, पौधे के तने में कई शाखाएँ होती हैं जो पतली-पतली होती हैं और गहरे हरे रंग की पत्तियाँ होती हैं इनके बीच सफेद-गुलाबी नन्हे नन्हे सुकोमल पुष्प लगते हैं। ये पुष्प छत्रों में अर्थात् अम्ब्रेला जैसे लगे होते हैं जिससे लम्बे अंडाकार लगभग 6 सेंटीमीटर के धूसर बीज लगते हैं। इनमें एक विशेष प्रकार की सुगंध होती है। जीरे का भौतिक-रासायनिक संघटन कुछ इस तरह होता है इसमें जलांश 6.2 प्रतिशत, प्रोटीन 17.7, वसा 23.8 प्रतिशत, कच्चा फाईबर 9.1 प्रतिशत, कार्बोहायड्रेट 35.5 प्रतिशत, खनिज 7.7 प्रतिशत, कैल्शियम 0.9 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.45 प्रतिशत, लौहतत्व 0.048 प्रतिशत, सोडियम 0.16 प्रतिशत, पोटेशियम 2.1 प्रतिशत, विटामिन बी 20.38 प्रतिशत, विटामिन बी12 10.73 प्रतिशत, विटामीन सी 17.2 प्रतिशत एवं खाद्य ऊर्जा 460 कैलोरी प्रति 100 ग्राम होती है। व्यापारी दृष्टि से जीरे को कुछ इस तरह लिया जाता है जलांश 6से10 प्रतिशत, वाष्पशील तेल का अंश 2.5 से 3.6 प्रतिशत, शीतल जल सार 14.9 से 20.4 प्रतिशत होती है। यदि हम जीरा पावडर उपयोग कर रहे हैं तो उसमें वाष्पशील तेल एरोमेटिक ऑइल, की मात्रा समाप्त हो जाती है। ताजे सूखे बीजों को कुचलने के तुरंत बाद 2.5से 4.5 प्रतिशत वाष्पशील तेल की प्राप्ति होती है। यह तेल बेशकीमती होता है, यह हल्के पीले रंग का पारदर्शी तेल होता है जिसे रखने पर इसका रंग गहरा हो जाता है। वैज्ञानिक शब्दावली में इसका मुख्य घटक क्यूमिन एलडीहाईट्स 20-40 प्रतिशत होता है और यह सुगंध उद्योग में महँगा बिकता है। इसके साथ ही जीरे में एक स्थिर तेल भी पाया जाता है, यह ब्राउन रंग का अवाष्पशील तेल होता है।

जीरा आयरन का सबसे अच्छा स्रोत है, जिसे नियमित रूप से खाने से खून की कमी दूर होती है। खाना हजम नहीं होता या फिर एसीडिटी है तो कच्चा जीरा मुँह में डाल कर खा लें, आराम मिलेगा। जीरे में विटामिन E भरपूर मात्रा में होता है जिससे यह त्वचा को स्वस्थ रखने में बहुत कारगर होता है। इसमें प्राकृतिक तेल होने के साथ साथ एंटी फंगल गुण होते हैं जिनसे त्वचा इंफेक्शन से बची रहती है और ये उम्र के असर को भी कम करता है। जीरे के बीज सुगन्धित और कटु से स्वाद वाले होते हैं। ये उत्तेजक, वात हरक, क्षुधावर्धक होते हैं। सूप, अचार, पापड़, सब्जी, ब्रेड, केक और जीरा चाय, सभी मसालों में प्रयुक्त होता है, दही, रायते और फलों पर इसके सिके बीजों का पावडर डाल कर खाया जाता है।

जीरा आयरन का सबसे अच्छा स्रोत है, जिसे नियमित रूप से खाने से खून की कमी दूर होती है। खाना हजम नहीं होता या फिर एसीडिटी है तो कच्चा जीरा मुँह में डाल कर खा लें, आराम मिलेगा। जीरे में विटामिन E भरपूर मात्रा में होता है जिससे यह त्वचा को स्वस्थ रखने में बहुत कारगर होता है। इसमें प्राकृतिक तेल होने के साथ साथ एंटी फंगल गुण होते हैं जिनसे त्वचा इंफेक्शन से बची रहती है और ये उम्र के असर को भी कम करता है। जीरे के बीज सुगन्धित और कटु से स्वाद वाले होते हैं। ये उत्तेजक, वात हरक, क्षुधावर्धक होते हैं। सूप, अचार, पापड़, सब्जी, ब्रेड,केक और जीरा चाय, सभी मसालों में प्रयुक्त होता है, दही, रायते और फलों पर इसके सिके बीजों का पावडर डाल कर खाया जाता है। भारत के अलावा विदेशों में इसका उपयोग डबल रोटी, केक, कुकीस, सूप में ज्यादा किया जाता है। अमेरिका में यह बिस्किट, ब्रेड, सूप का मसाला है, हॉलैंड और स्विट्जरलैंड में जीरा पनीर में, फ्रांस में जीरा केक, पेस्ट्री, बेकरी पदार्थों में, जर्मनी में ब्रेड में, पाकिस्तान और मुगल देशों में नॉनवेज का यह अनिवार्य मसाला है। भारत में बघार यानी तड़के में जीरा प्रतिदिन के भोजन का हिस्सा है।

दक्षिण भारत में इसके बीज और यह सांभर के मसाले में डाला जाता है। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश में यह जीरावन के रूप में चटनी की तरह खाया जाता है। आयुर्वेद में जीरा बदहजमी, आफरा, दस्त के इलाज में गुणकारी माना गया है, पशु चिकित्सा में ग्रामीण क्षेत्रों में जीरा जानवरों को खिलाया जाता है। इसका स्थिर तेल साबुन उद्योग में उपयोग होता है। कन्नड़ में यह जीरिगे, तमिल में जिर्गम, संस्कृत में जीरक, कहलाने वाला जीरा सफेद, कालाजीरा, हरा जीरा और शाह जीरे के नाम से अलग अलग वैरायटी में मिलता है। शाह जीरा और काला जीरा गरम मसाले में प्रयुक्त होता है। भारत में असम, केरल और बंगाल को छोड़ कर यह लगभग सभी प्रान्तों में खेती करके उगाया जाता है।

तेज पत्ता (कैसिया लिग्निया)

पुलाव, बिरयानी,छोले, नॉनवेज जैसे भोजन में अक्सर आप एक दो पत्ते जैसे मसाले देखते हैं ये पत्ते पके हुए भोजन से अलग कर दिये जाते हैं, इन्हें गरम मसाले में पावडर बना लिया जाता है, भारतीय इस पत्ते से अच्छी तरह वाकिफ होते हैं। जी हाँ यह तेज पत्ता ही है जिसे वानस्पतिक भाषा में सिनेमोमम तमाला कहते हैं। तमिल में यह तालिश्पत्तिरी, गुजराती में तमाल पत्र, उर्दू में तेजपात, कहा जाने वाला यह मसाला एक मछाले कद के पेड़ का पत्ता होता है। यह हिमालय, खासी और जयंतिया की पहाड़ी वनस्पति है इस वनस्पति की विभिन्न जातियों से तेज पत्ते प्राप्त किये जाते हैं। इसकी छाल को व्यापारिक भाषा में कैसिया लिग्निया छाल कहते हैं। पत्ते मसाले के रूप में उपयोग होते हैं, कश्मीर में इसके गीले पत्ते पान बनाकर खाए जाते हैं। यूरोपियन भोजन में ये पत्ते की तरह भारतीय भोजन में तेज पत्ते काम में लिए जाते है। रंगाई में भी इसका उपयोग हर्र के साथ शोधन करके उपयोग किया जाता है। स्वास्थ्यवर्धक यह पत्तेदार मसाला वात निस्सारी, पेटदर्द में लाभदायक, मसाले में खुशबू के लिए उपयोग होता है। इसकी छाल सुगन्धित होती है जो दालचीनी से मोटी होती है। दालचीनी में इसकी मिलावट की जाती है। मसाले के तौर पर इस्तेमाल होने वाली इन पत्तियों में कई औषधीय गुण पाए जाते हैं। इनसे तेल भी निकाला जाता है। तेजपत्ते में भरपूर मात्रा में एंटी-ऑक्सीडेंट पाया जाता है।

इन पत्तियों में कई तरह के प्रमुख लवण जैसे कॉपर, पोटैशियम, कैल्शियम, गैगनीज, सेलेनियम और आयरन पाया जाता हैद्य हालाँकि बहुत कम लोगों को ही पता होगा कि तेजपत्ता खाने का स्वाद और खुशबू बढ़ाने के साथ ही एक बेहद फायदेमंद मसाला भी है। तेजपत्ता अत्यंत गर्म एवं उत्तेजक होता है इसीलिए यह यौन-शक्ति वृद्धि करने में लाभदायक है। यह गठिया रोग, उदर शूल एवं अपच संबंधी पेट के रोगों में भी लाभदायक है। इसके सेवन से भूख खुलकर लगती है। मूत्र विकार में भी यह लाभदायक है। तेजपत्ते के चूर्ण का हर तीसरे या चौथे दिन मंजन करने से दाँत चमकने लगते हैं एवं कीड़े लगने का भय नहीं रहता।

इसके अलावा इन पत्तियों में कई तरह के प्रमुख लवण जैसे कॉपर, पोटैशियम, कैल्शियम, मैगनीज, सेलेनियम और आयरन पाया जाता है। हालाँकि बहुत कम लोगों को ही पता होगा कि तेजपत्ता खाने का स्वाद और खुशबू बढ़ाने के साथ ही एक बेहद फायदेमंद मसाला भी है। तेजपत्ता अत्यंत गर्म एवं उत्तेजक होता है इसीलिए यह यौन-शक्ति वृद्धि करने में लाभदायक है। यह गठिया रोग, उदर शूल एवं अपच संबंधी पेट के रोगों में भी लाभदायक है। इसके सेवन से भूख खुलकर लगती है। मूत्र विकार में भी यह लाभदायक है। तेजपत्ते के चूर्ण का हर तीसरे या चौथे दिन मंजन करने से दाँत चमकने लगते हैं एवं कीड़े लगने का भय नहीं रहता। यह एक खुशबूदार पत्ता है जिसे इसकी तेज सुगंध के लिए, अक्सर सूप, ग्रेवी, चावल से बने व्यंजन में डाला जाता है। तलामपत्र का ऊपरी भाग चमकीला, जैतूनी हरे रंग का होता है और नीचे के भाग का रंग फीका जैतूनी रंग का होता है। इस पत्ते की लंबाई 2.5 से 7.5 सेन्टीमीटर के बीच होती है और इसकी चौड़ाई 1.6 से 2.5 सेन्टीमीटर के बीच होती है। इस पत्ते का आकार अंडाकार, नुकीला और मुलायम होता है। सूखने के बाद, इस पत्ते की खुशबू हर्बल, हल्की फूल जैसी और काफी हद तक ऑरेगानो और थाईम जैसी होती है। स्वास्थ्यवर्धक तेजपत्ता के गुण रक्त में उच्च मात्रा में शर्करा, सरदर्द, कीटाणु और फफूंद इन्फेक्शन और गैस के अलसर को ठीक करने में मदद करता है। तेजपत्ता और बेरी का प्रयोग उनके स्तंभक, वातहर, प्रस्वेदक, पाचक, मूत्रवर्धक, वमनकारी और पेट संबंधित गुणों के लिए किया जाता है। तेजपत्ता प्रतिजीवाणु और एन्टीफंगल भी होते हैं। तेजपान की पत्तियों में कृमिनाशक गुण पाए जाते हैं। सूखी पत्तियों का चूर्ण बनाकर प्रतिदिन रात में सोने से पहले 2 ग्राम, गुनगुने पानी के साथ मिलाकर पिया जाए तो पेट के कृमि मर कर मल के साथ बाहर निकल आते हैं। पर्ण से 2.0 प्रतिशत पर्ण तेल प्राप्त होता है, इस तेल में 80-90 प्रतिशत युजिनोल होता है,साथ ही इसमें डेक्स्त्रो-फेलेंद्रिन भी पाया जाता है। इसकी छाल से प्राप्त वाष्पीत तेल हल्के पीले रंग का

होता है जिसमें 70-80 प्रतिशत सिनेमिक एलडी हाईड होता है। सिनमोमम तमाला प्रायः उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय हिमालय से 2000 मीटर एम एस एल की उत्तुंगता तक उत्तर पूर्व में पाया जाता है। यह नेपाल, बंग्लादेश एवं म्यानमार में भी बढ़ता है। जब यह पेड़ दस साल का बनता है, तब इसके पत्ते तोड़ लिए जाते हैं और यह काम एक शतक तक जारी रखा जाता है। पक्व पत्ते अक्तूबर से मार्च तक के दौरान संग्रहित किए जाते हैं। भारत में तेजपत्ता मुख्य रूप से सिलहट जिले के जयंतिया परगने में होता है। मणिपुर-अरुणांचल में इसके बाग लगाये जाते हैं। यह इन जंगलों में भी अपने आप उग आते हैं। पेड़ जब दस साल का हो जाता है तो उसके पत्ते तोड़े जा सकते हैं इसके पत्ते तीन चार दिनों तक सुखाये जाते हैं फिर बण्डल बनाकर रख लिए जाते हैं।

(कलौंजी-क्यूमिनब्लैक)

यह बहुत छोटे छोटे काले दानेदार बीज होते हैं, इसका वानस्पतिक नाम निगेला सैटाइवा लिन है। यह अंबेलिफेरी कुल का पौधा है, कलौंजी को अँग्रेजी में क्यूमिन ब्लैक कहते हैं। यह विशेष रूप से अचार के मसाले में प्रयुक्त होता है। नाश्ते के लिए बनाए जाने वाले खस्ता, मठरी, बिस्किट में भी डाले जाते हैं। कलौंजी एक छोटे पौधे में फलीदार बीज की तरह लगती है। यह पौधा लगभग 45-60 सेंटीमीटर ऊँचा होता है। भारत में यह पंजाब, हिमाचल प्रदेश, बिहार और असम मे उगाया जाता है। कई बार यह अपने आप भी उग आता है, इसके पुष्प नीले रंग के एवं फल और बीज काले रंग के तिकोने आकार के होते हैं। कलौंजी में ऐसे अनेक पोषक तत्व, खनिज तत्व और अम्ल पाए जाते हैं जो इसे खास बनाते हैं और इसकी इसी खासियत का प्रयोग रोगों से मुक्ति पाने के लिए किया जाता है, जिसकी वजह से इसे रोगनिवारक कीटाणुरोधक कलौंजी के नाम से भी जाना जाता है। मुख्यतः कलौंजी के बीजों का ही औषधि के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। कलौंजी में थाइमोक्विनोन नाम का एक पोषक तत्व भी पाया जाता है, ये तत्व अग्नाशय में होने वाले कैंसर को रोकता है। कलौंजी में अनेक तरह के खनिज तत्व होते हैं वही ये हर तरह के कीटाणुओं चाहे वो ग्राम पॉजिटिव हो या ग्राम नेगेटिव हो, सभी पर वार करने में भी पूरी तरह सक्षम है। मुख्य रूप से ये एस. विरिडेन्स, शिगेला, ई. कोलाई, स्टेफाइलोकोकस ऑरियस, स्यूडोमोनास एरूजिनोसा, एस. पाइरोजन, सालमोनेला टाइफी, वाइब्रियो कोलेराइ, आदि कीटाणुओं को साफ करती है। इसके अलावा कलौंजी को फंगस रोधी भी माना जाता है। कलौंजी में कुछ ऐसे तेल भी होते हैं जो उड़नशील होते हैं इसीलिए जब कलौंजी के तेल से शरीर की मालिश की जाती है या उसको भोजन में इस्तेमाल किया जाता है तो ये रक्त में मिलकर उसकी शर्करा को भी कम कर देता है।

रासायनिक संगठन की दृष्टि से इसमें कुल भस्म 3.8 प्रतिशत, एसिड अविलय भस्म 0.0 प्रतिशत से 05 प्रतिशत तक,वाष्पशील तेल 0.5 प्रतिशत, ईथर सार 35.6 से 41. 6 प्रतिशत, ओलिक एसिड के रूप में मौजूद रहता है एल्कोहलिक एसिडिटी 3.5 से 6.3 प्रतिशत होती है इसमें दो प्रकार के तेल होते हैं एक वाष्पशील तेल और दूसरा स्थिर तेल इन दोनों के अलावा कलौंजी में एक कड़वा तत्व भी होता है निगेलिन, टेनिन, रेजिन, प्रोटीन, ग्लूकोस, सैपोनिन और एरोबिक एसिड होते हैं। प्रसुप्त बीजों में ये मुक्त एमिनो एसिड मौजूद होते हैं, जिनमें ग्लुतोमिक एसिड, सिस्टीन, लाइसिन, एलेनीन, ट्रिप्टोफेन, ल्यूसिन होते हैं इसमें एस्पेरेजिन नहीं पाया जाता। इसे पंजाबी में कलुंजी, बंगला में कालिजिरा, संस्कृत में कृष्णजीरा कहते हैं। वे लोग जिन्हें श्वास संबंधी समस्याएँ हैं, छाती में दर्द है या दमा रोग है उन्हें रोजाना कलौंजी के तेल से अपनी कमर और छाती की मालिश करनी चाहिये। इसके अलावा आप रोजाना 3 बड़ी चम्मच कलौंजी का तेल पी भी सकते हैं और अधिक लाभ लेने के लिए आप पानी में कलौंजी का तेल डालकर उसे उबालें और उसकी भाप को लें। कलौंजी का हर तत्व किसी ना किसी रूप से शरीर के लिए लाभदायी ही होता है और इसलिए इसको हर मर्ज की दवा माना जाता है। ये दूध व मूत्र में वृद्धि करती है, गंजापन दूर

वे लोग जिन्हें श्वास संबंधी समस्यायें हैं,छाती में दर्द है या दमा रोग है उन्हें रोजाना कलौंजी के तेल से अपनी कमर और छाती की मालिश करनी चाहिये। इसके अलावा आप रोजाना 3 बड़ी चम्मच कलौंजी का तेल पी भी सकते हैं और अधिक लाभ लेने के लिए आप पानी में कलौंजी का तेल डालकर उसे उबालें और उसकी भॉप को लें। कलौंजी का हर तत्व किसी ना किसी रूप से शरीर के लिए लाभदायी ही होता है और इसलिए इसको हर मर्ज की दवा माना जाता हैद्य ये दूध व मूत्र में वृद्धि करती है, गंजापन दूर करती है, जुखाम, खाँसी, बुखार को पल भर में ठीक कर देती है। अगर कोई माइग्रेन या लकवे की वजह से परेशान है तो उसको भी कलौंजी का सेवन करना चाहिये। साथ ही ये पीलिया, बवासीर, मोतियाबिंदु, कान के दर्द, सफेद दाग इत्यादि जैसे रोगों में भी बहुत फायदेमंद सिद्ध होती है

इसमें कार्बोहाइड्रेट, नमी, प्रोटीन, वाष्पशील तेल, गैर–वाष्पशील ईथर निचोड़ (वसा) और रेशों से बना होता है। इसके अलावा खनिज पदार्थ, हाइड्रोक्लोरिक एसिड में न घुलने वाली राख, कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहा, सोडियम, पोटेशियम, थायामाइन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, विटामिन 'सी' और 'ए' जैसे तत्व भी लौंग में प्रचूर मात्रा में पाए जाते हैं। इसके अलावा कई तरह के औषधीय तत्व होते हैं। इसका ऊष्मीय मान 43 डिग्री है और इससे कई तरह के औषधीय व भौतिक तत्व लिए जा सकते हैं।

करती है, जुखाम, खाँसी, बुखार को पल भर में ठीक कर देती है। अगर कोई माइग्रेन या लकवे की वजह से परेशान है तो उसको भी कलौंजी का सेवन करना चाहिये। साथ ही ये पीलिया, बवासीर, मोतियाबिंद, कान के दर्द, सफेद दाग इत्यादि जैसे रोगों में भी बहुत फायदेमंद सिद्ध होती है।

लौंग (सिजिजियम ऐरौमैटिकम)

मिरटेसी परिवार की ये अध खिलीकलियाँ होती हैं जो लौंग कहलाती है। लौंग एक सदाबहार मध्यम आकार के वृक्ष से प्राप्त वायु शुष्कित अनखिली कली है। यह वृक्ष 10–12 मीटर ऊँचाई तक बढ़ता है और लगभग सातवीं साल में इसमें फूल आने लगते हैं। इसमें 80 या उससे अधिक वर्षों तक कलियाँ आती रहती हैं। यह पूर्वी देशों का एक मूल्यवान मसाला है। कलियों पर जब एक स्पष्ट गुलाबी चमक दिखाई पड़ती है, तब हाथों से लौंग तोड़ लिए जाते हैं और कई दिनों तक धूप में सुखाए जाते हैं। अनखिली कलियों, पत्तों व डंठलों से वाष्पशील तेल पाए जाते हैं। इसे कई नामों से पहचाना जाता है जैसे हिन्दी– लंग, बंगला– लवंग, गुजराती–लवंगा, कन्नड़–लवंग, मलयालम–ग्राँपू मराठी–लुवाँग उड़िया–लबंग पंजाबी– लौंग, संस्कृत–लवंग, तमिल–किराम्बू, लवंगं तेलुगु–लवंगलु, उर्दू– लौंग।

लौंग का प्रयोग मुख्यतः पाक प्रयोजनों तथा खाने उद्योग में सुवास कारक के रूप में होता है। इसका सुवास मधुर एवं स्वादिष्ट व्यंजनों में अच्छी तरह मिल जाता है। वातहर, सगंध एवं उत्तेजक के रूप में यह दवाओं में बडा महत्वपूर्ण है। इंडोनेशिया में, इसके उत्पादन का ज्यादातर हिस्सा 'क्रेटैक' सिगरेट बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। लौंग तेल के प्रतिरोधी तथा प्रतिजैविक गुणों से दवाओं में, खासकर दन्त चिकित्सा, मुख एवं ग्रसनी संबंधी उपचार में लाभ उठाया जाता है। टूथपेस्ट और माउथवॉश, साबुन तथा इत्रों के निर्माण में इसका बहुतायत प्रयोग किया जाता है।

लौंग में मौजूद तत्वों का विश्लेषण किया जाए तो इसमें कार्बोहाइड्रेट, नमी, प्रोटीन, वाष्पशील तेल, गैर–वाष्पशील ईथर निचोड़ (वसा) और रेशों से बना होता है। इसके अलावा खनिज पदार्थ, हाइड्रोक्लोरिक एसिड में न घुलने वाली राख, कैल्शियम, फहस्फोरस, लोहा, सोडियम, पोटेशियम, थायामाइन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, विटामिन 'सी' और 'ए' जैसे तत्व भी लौंग में प्रचूर मात्रा में पाए जाते हैं। इसके अलावा कई तरह के औषधीय तत्व होते हैं। इसका ऊष्मीय मान 43 डिग्री है और इससे कई तरह के औषधीय व भौतिक तत्व लिए जा सकते हैं। लौंग पूर्वी देशों का सबसे प्राचीन और बहुमूल्य मसाला है। ईसा से सौ साल पहले भी लोगों को लौंग के बारे में जानकारी थी और इसका उपयोग होता था। चीनियों को ईसापूर्व 155 में इसका पता चला था। यूरोप में लौंग का 1265 में पहली बार आयात हुआ था। इसके मूल स्थान का पता तब चला जब 16वीं शताब्दी में पुर्तगालियों ने मलक्का द्वीप की खोज की। फ्रांसीसियों ने 1770 में लौंग के पेड़ मॉरीशस और रीयूनियन द्वीप में लगाये। ईस्ट इण्डिया कंपनी ने 1800 में भारत में लौंग उत्पादन शुरू किया। भारत में इसकी खेती मुख्यतः दक्षिण भारत में होती है। इसका क्षेत्रफल लगभग 200 एकड़ है। यह नीलगिरी, तेंवासी की पहाड़ियों, तमिलनाडु के कन्याकुमारी जिले में और केरल राज्य में उगाई जाती है। लौंग की हरी कलियों को खिलने से पहले ही तोड़ लिया जाता है एवं गहरी ब्राउन होने तक तेज धूप में सुखाया जाता है। कलियों का आकार कुछ बेलनाकार होता है उसके ऊपर चार दंतों वाला केलिक्स और अनखिला करोला होता है इनमें जलांश की मात्रा 12 प्रतिशत और बाहरी पदार्थ 2–3 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होता। प्रोटीन 6.3 प्रतिशत,वाष्पीत तेल 13.2 प्रतिशत, अवाष्पित इथर सार 15.5 प्रतिशत, कच्चा रेशा 11.1 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 57.7 प्रतिशत, खनिज 5 प्रतिशत, कैल्शियम 0.7 प्रतिशत, लौह 0.01 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.11 प्रतिशत होते हैं।

इसके वाष्पित तेल के मुख्य घटक युजिनोल, युजिनोल एसिटेट, करोफिलिन, इसमें जो खुशबू होती है उसकी वजह इसमें पाया जाने वाला महत्वपूर्ण यौगिक है मैथिल–एन–एमिल कीटोन। मतली, हिचकी, पेट फूलना, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, गठिया, दाँत दर्द, डायरिया, संक्रमण के रूप में उपयोगी यह एंटीसेप्टिक, कीट नाशक, उत्तेजक, पुनःशक्ति दायक, शारीरिक गर्मीदायक, कामोद्दीपक टॉनिक भी है। एंटीसेप्टिक गुणों के कारण यह चोट, घाव, खुजली और संक्रमण में भी काफी उपयोगी होता है। इसका उपयोग कीटों के काटने या डंक

मारने पर भी किया जाता है। लेकिन संवेदनशील त्वचा पर इसे नहीं लगाना चाहिए। लौंग और हल्दी पीस कर लगाने से नासूर मिटता है। लौंग के तेल को त्वचा पर लगाने से सर्दी, फ्लू और पैरों में होने वाला फंगल इन्फेक्शन और त्वचा के कीड़े भी नष्ट होते हैं। आँखों के पास या चेहरे पर निकली छोटी-छोटी फुंसियों पर लौंग घिस कर लगाने से फुंसियाँ और सूजन भी ठीक हो जाती हैं। आंत्र ज्वर में दो किलो पानी में पाँच लौंग आधा रहने तक उबालकर छानकर इस पानी को दिन में कई बार पिलाएँ। एक लौंग पीस कर गर्म पानी से फंकी लें। दो तीन बार लेने से ही सामान्य बुखार उतर जाएगा। चार लौंग का पाउडर पानी में घोल कर पिलाने से तेज बुखार भी कम हो जाता है। चार लौंग पीस कर पानी में घोल कर पिलाने में तेज ज्वर कम हो जाता है। लौंग के तेल को तिल के तेल (सेसमी ऑइल) के साथ मिलाकर डालने से कान के दर्द में राहत मिलती है। लौंग मानसिक दबाव और थकान को कम करने का काम करता है। यह अनिद्रा के मरीजों और मानसिक बीमारियों जैसे कम होती याददाश्त, अवसाद और तनाव में उपयोगी होता है। जल्दी-जल्दी प्यास लगने पर मिश्री एवं लौंग को पीसकर खाने से जल्दी प्यास नहीं लगती है। प्यास की तीव्रता होने पर उबलते पानी में लौंग डाल कर पिलाएँ। इससे प्यास कम हो जाती है। दाँत दर्द होने पर लौंग की एक कली दाँत के नीचे रखने से दर्द से तुरंत आराम मिलता है और इसके एन्टिसेप्टिक गुण दाँतों के संक्रमण को कम करता है। लौंग एक ऐसा मसाला है जो दंत क्षय को रोकता है और मुँह की दुर्गंध को दूर भगाता है। लौंग की प्रवृत्ति बेहद गर्म होती है अतः अपने शरीर की प्रति को समझते हुए ही इसका सेवन करना चाहिए। अतः अधिक मात्रा में इसका सेवन करना नुकसानदेय हो सकता है अतः लौंग जरूरत से अधिक नहीं खाना चाहिए। लौंग की भारतीय खाने में खास जगह है। इसके उपयोग से खाने में स्वाद के साथ-साथ कुछ अहम गुण भी जुड़जाते हैं। इसका उपयोग तेल व एंटीसेप्टिक के रुप में किया जाता है। लौंग में आपके स्वास्थ्य को दुरुस्त रखने के कई गुण होते हैं। लौंग कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वाष्पशील तेल, वसा जैसे तत्वों से भरपूर होती है। इसके अलावा लौंग में खनिज पदार्थ, हाइड्रोक्लोरिक एसिड में न घुलने वाली राख, कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहा, सोडियम, विटामिन सी और ए भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। लौंग औषधीय एवं आयुर्वेदिक गुणों का खजाना है।

लौंग के पत्तों से भी तेल निकला जाता है जिसका उपयोग दवाइयों में किया जाता है। हवा में सुखाए गए लौंग के रंग रूप, स्वाद के अनुसार इन्हें कई ग्रेड में बाँट कर बेचा जाता है। एक किलोग्राम में लगभग 8,000-10,000 हजार लौंग चढ़ती है। तेल निकली लौंग झुर्रीदार दिखाई देती है जिससे इसकी कीमत कम हो जाती है, अक्सर व्यापारी इसकी मिलावट कर देते हैं। यदि लौंग की कली को ना तोड़ा जाए तो इसमें परगण के बाद फूल खिल जाता है जो गूदेदार बैंगनी रंग का अंडाकार होता है। इसमें एक ही बीज होता है। इसमें एक ही फल आता है, इस फल को 'मदर ऑफ क्लोव' कहते हैं। लौंग का सम्पूर्ण पौधा उपयोगी होता है, इसके पत्ते, तना, कली सभी का तेल उपयोगी होता है। पानी या भाप में आसवन करके सुगंध तेल प्राप्त किया जाता है, इसके कई उपयोग किये जाते हैं, यह दवाइयों में सबसे ज्यादा उपयोग किया जाता है।

इसके वाष्पित तेल के मुख्य घटक युजिनोल, युजिनोल एसिटेट, करोफिलिन, इसमें जो खुशबू होती है उसकी वजह इसमें पाया जाने वाला महत्वपूर्ण योगिक है मैथिल-एन-एमिल कीटोन। मतली, हिचकी, पेट फूलना, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, गठिया, दाँत दर्द, डायरिया, संक्रमण के रूप में उपयोगी यह एंटीसेप्टिक, कीट नाशक, उत्तेजक, पुनःशक्ति दायक, शारीरिक गर्मीदायक, कामोद्दीपक टॉनिक भी है। एंटीसेप्टिक गुणों के कारण यह चोट, घाव, खुजली और संक्रमण में भी काफी उपयोगी होता है। इसका उपयोग कीटों के काटने या डंक मारने पर भी किया जाता है। लेकिन संवेदनशील त्वचा पर इसे नहीं लगाना चाहिए। लौंग और हल्दी पीस कर लगाने से नासूर मिटता है। लौंग के तेल को त्वचा पर लगाने से सर्दी, फ्लू और पैरों में होने वाला फंगल इन्फेक्शन और त्वचा के कीड़े भी नष्ट होते हैं।

जावित्री और (जायफल मिरिस्टिका फ्रेग्रेंस)

जायफल का वानस्पतिक नाम मिरिस्टिका फ्रेग्रेंस है, यह एक सदाबहार वृक्ष है जो इण्डोनेशिया के मोलुकास द्वीप (Moluccas) का देशज है। इससे दो मसाले प्राप्त होते हैं- जायफल (nutmeg) तथा जावित्री (mace)। यह चीन, ताइवान, मलेशिया, ग्रेनाडा, केरल, श्रीलंका, और दक्षिणी अमेरिका में खूब पैदा होता है।वृक्ष का वास्तविक बीज जायफल है, जो मोटे तौर पर अंडे के आकार का होता है और 20 से 30 मि. मी. (0.8 से 1 इंच) लंबा और 15 से 18 मि.मी. (0.6 से 0.7 इंच) चौड़ा और 5 और 10 ग्रा. (0.2 और 0.4 औंस) के बीच वजन होता

है, जबकि जावित्री एक सूखा 'लैसदार' लाल कवर या बीज को ढँकने वाला छिलका होता है। यही एक ऐसा उष्ण कटिबंधीय फल है जिसका स्त्रोत दो अलग मसाले हैं। जायफल और जावित्री का स्वाद और गुण लगभग समान होता है, जायफल थोड़ा

अधिक मीठा होता है वहीं जावित्री का स्वाद अधिक स्वादिष्ट होता है। अक्सर जावित्री को हल्के खाने पदार्थों में उपयोग किया जाता है। कह सकते हैं कि नारियल की रेशेदार छाल जैसे ही जायफल के सुखाये गए फल की जालिका रूपी छालरेटी कुलेट, बीजचोल एरिल, को ही जावित्री कहा गया है। एक तरह से यह खुबानी जैसा फल है इसके कठोर पतले, चमकीले काले बीज का आकर्षण चमकीला आवरण ही है जो जावित्री है मिरिस्टिका वृक्ष के बीज को जायफल कहते हैं। यह बीज चारों ओर से बीजोपांग (aril) द्वारा ढँका रहता है। यही बीजोपांग व्यापारिक महत्व का पदार्थ जावित्री है। इस वृक्ष का फल छोटी नाशपाती के रूप का एक इंच से डेढ़ इंच तक लंबा, हल्के लाल या पीले रंग का गूदेदार होता है। परिपक्व होने पर यह फल दो खंडों में फट जाता है और भीतर सिंदूरी रंग का बीजोपांग या जावित्री दिखाई देने लगती है। जावित्री के भीतर गुठली होती है, जिसके काष्ठवत् खोल को तोड़ने पर भीतर जायफल (nutmeg) प्राप्त होता है। जायफल तथा जावित्री व्यापार के लिये मुख्यतः पूर्वी ईस्ट इंडीज से प्राप्त होतेहैं। इसके वृक्ष 5-6 वर्ष की आयु प्राप्त होने पर फूलते-फलते हैं। फूल लगने के पहले नर या मादा वृक्ष को पहचानना कठिन होता है। ग्रैनाडा (वेस्ट इंडीज) में साधारणतः नर तथा मादा वृक्ष 3:1के अनुपात में पाए जाते हैं। जायफल का वृक्ष समुद्रतट से 400-500 फुट तक की ऊँचाई पर उष्णकटिबंध की गरम तथा नम घाटियों में पैदा होता है।

जायफल का लगभग 75% (वजन द्वारा) बटर ट्रिमिरिल्स्टिन होता है जिसे मिरिस्टिक एसिड में तब्दील किया जा सकता है, एक 14-कार्बन फैटी एसिड, कोकोआ बटर के लिए एक स्थानापन्न के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है और दूसरे इसे चर्बियों के साथ मिश्रित किया जा सकता है जैसे कॉटन सीड तेल या ताड़ का तेल और एक औद्योगिक लुब्रिकेंट के रूप में भी संप्रयोग किया जाता है।

जायफल गुणकारी औषधि भी है। आयुर्वेद में जायफल को वात एवं कफ नाशक बताया गया है। आमाशय के लिए उत्तेजक होने से आमाशय में पाचक रस बढ़ता है, जिससे भूख लगती है। आँतों में पहुँचकर वहाँ से गैस हटाता है। ज्यादा मात्रा में यह मादक प्रभाव करता है। इसका प्रभाव मस्तिष्क पर कपूर के समान होता है, जिससे चक्कर आना, प्रलाप आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इससे कई बीमारियों में लाभ मिलता है तथा सौन्दर्य सम्बन्धी कई समस्याओं से भी निजात मिलती है। जायफल और जावित्री दो ऐसे मसाले हैं जो हर घर में भोजन में प्रयोग किये जाते हैं खासतौर पर मुगलाई व्यंजनों में। जायफल सुगन्धित और स्वाद में मीठा होता है। जायफल का तेल निकाला जाता है जिसका इस्तेमाल कॉस्मेटिक और दवा उद्योगों में भी किया जाता है, उदाहरण स्वरूप टूथपेस्ट में, और कुछ खाँसी की दवाईयों में प्रमुख संघटक के रूप में प्रयोग किया जाता है। परंपरागत चिकित्सा में जायफल और जायफल तेल का इस्तेमाल नसों और पाचन प्रणाली से संबंधित बीमारियों के लिए प्रयोग किया जाता था। जायफल यूँ तो सर्दियों में उपयोगी है लेकिन इसकी औषधीय महत्ता आयुर्वेद में साल भर मानी गई है। यह वेदनानाशक, वातशामक और कृमिनाशक है। यह स्नायविक संस्थान के लिए उपयोगी होता है। जायफल के भाप आसवन द्वारा महत्वपूर्ण तेल प्राप्त किया जाता है और इत्रादि सुगंधित वस्तुएँ या सामग्री और दवा में उद्योगों में भारी मात्रा में इसका इस्तेमाल किया जाता है। यह तेल रंगहीन या हल्का पीले रंग की होती है और इसमें जायफल की खुशबू और स्वाद आती है। ओलियो केमिकल उद्योग के लिए इसके अनेक अंश महत्वपूर्ण होते हैं और बेक किए हुए पदार्थों, सीरप्स, पेय पदार्थों और मिठाई में एक प्राकृतिक खाद्य पदार्थ के स्वाद के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

जावित्री का रंग लाल व पीला होता है। जावित्री का स्वाद तीखा और खुशबूदार होता है। यह मन को प्रसन्न करती है, जिगर को बलवान करती है, मैथुनशक्ति को बढ़ाती है, पथरीको तोड़ती है। इसकी सुवास जायफल से मिलाती हुई किन्तु ज्यादा नाजुक मानी गई है। जावित्री जायफल से ज्यादा महँगी होती है। व्यापारिक जावित्री 2.5 सेंटीमीटर से ज्यादा लम्बी और एक मिलीमीटर मोटी फाँक में होती है। इसकी तीन किस्म अच्छी होती है जिनमें बांदा जावित्री-सबसे बढ़िया होती है यह सुनहरे नारंगी रंग की होती है, जावा जावित्री-सुनहरी पीली होती है इस पर लाल धारियाँ होती है। तीसरी सियाऊ जवात्री उक्त दोनों से थोड़ी कम आँकी गई क्योंकि इनका वाष्पशील तेल कम होता है इसके अलावा पापुआ जावित्री चौथे प्रकार की होती है। जिस पेड़ से 100 किलो जायफल प्राप्त होते हैं उससे जावित्री केवल 3-4 किलो ही मिलती है। इसीलिए यह महँगी होती है। इसमें जलांश 15.9%, प्रोटीन 6.5%, ईथर सार 24.4%, कार्बोहाइड्रेट 47.8%, लोहा 12.6% होता है। इसके तेल में एमिलोडेकसीन के कारण सुगंध होती है।

stswatitiwari@gmail.com

❑❑❑

कॅरियर

एंबेडेड सिस्टम

संजय गोस्वामी

एक माइक्रो प्रोसेसर जो कि एक ऑटोमोबाइल इंजन को नियंत्रित करता है। एक एम्बेडेड प्रणाली बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के अपने दम पर चलाने के लिए डिजाइन किया जाता है और वास्तविक समय में दूर-दराज के इलाके में काम करने के लिए किसी इलेक्ट्रॉनिक्स सिस्टम यंत्र की आवश्यकता होती है। चूंकि एम्बेडेड सिस्टम विशिष्ट कार्यों के प्रति समर्पित होता है, अतः डिजाइन इंजीनियर्स, उत्पाद के आकार व लागत को घटाकर तथा विश्वसनीयता एवं प्रदर्शन को बढ़ाकर इसे अधिक उपयोगी बना सकते हैं।

विज्ञान में इलेक्ट्रॉनिक तथा इन्फॉर्मेशन टेक्नॉलॉजी के समावेश से कई ऐसे क्षेत्र सामने आए हैं, जिनमें हाल के दिनों में कॅरियर की अच्छी संभावनाएँ देखी गई हैं। अब इसमें एक और नया नाम जुड़ गया है एंबेडेड सिस्टम का। यदि आप विज्ञान के क्षेत्र में कुछ नए सॉफ्टवेयर की तलाश में हैं, तो एंबेडेड सिस्टम आपके लिए अच्छा विकल्प हो सकता है। एंबेडेड सिस्टम, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर से मिलकर बनता है, एम्बेडेड सिस्टम एक कम्प्यूटर सिस्टम है, जिसे अक्सर रीयल-टाइम कम्प्यूटिंग कार्यों को करने के लिए बनाया जाता है। यह पूरे उपकरण के एक भाग में एम्बेडेड (अंतःस्थापित) होता है, जिसमें अक्सर हार्डवेयर तथा यांत्रिक भाग शामिल होते हैं। एम्बेडेड सिस्टम को मुख्य प्रोसेसिंग के एक या अधिक अंतर्भागों, विशिष्टतः एक माइक्रो कंट्रोलर या एक डिजिटल सिग्नल प्रोसेसर (DSP), द्वारा नियंत्रित किया जाता है। हालांकि इसकी मुख्य विशेषता किसी एक विशिष्ट कार्य को संभालने के लिए है, जिसमें अत्यधिक शक्तिशाली प्रोसेसर्स की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, हवाई यातायात नियंत्रण प्रणालियों को एम्बेडेड के रूप में देखना उपयोगी हो सकता है, हालांकि उनमें मेनफ्रेम कम्प्यूटर तथा हवाई-अड्डों और राडार स्थानों के बीच क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय नेटवर्क शामिल होते हैं। संभवतः प्रत्येक राडार में अपने स्वयं के एक या एक से अधिक एम्बेडेड सिस्टम्स शामिल होते हैं। भौतिक रूप से, एम्बेडेड सिस्टम, वहनीय उपकरणों, जैसे डिजिटल घड़ियों तथा MP3 प्लेयर्स, से लेकर यातायात बत्ती, कारखानों के नियंत्रक अथवा परमाणु ऊर्जा केन्द्र में रोबोटिक्स का काम, जटिलता का स्तर एकल माइक्रो कंट्रोलर चिप के लिए निम्न जटिलता से लेकर किसी बड़े ढांचे (Chassis) या घेरे में लगी अनेक इकाइयों, उपकरणों तथा नेटवर्क्स के लिए उच्च जटिलता तक होता है।

डेड सिस्टम्स की रचना कुछ विशिष्ट कार्य करने के लिए की जाती है, न कि अनेक कार्यों के लिए एक सामान्य-उद्देश्य वाले कम्प्यूटर के रूप में कार्य करने के लिए। इनमें से कुछ को सुरक्षा और उपयोगिता जैसे कारणों से रीयल-टाइम प्रदर्शन से जुड़े कुछ निर्बंधों की पूर्ति भी करनी होती है य अन्य की प्रदर्शन आवश्यकताएँ कम या शून्य हो सकती हैं, जो लागत को कम करने के लिए सिस्टम हार्डवेयर के सरलीकरण की अनुमति देता है। एम्बेडेड प्रणाली, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर का संयोजन है जो एक साथ एक बड़ी मशीन के एक घटक के रूप में काम करता है। एम्बेडेड प्रणाली का एक उदाहरण है एक माइक्रो प्रोसेसर जो कि एक

ऑटोमोबाइल इंजन को नियंत्रित करता है। एक एम्बेडेड प्रणाली बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के अपने दम पर चलाने के लिए डिजाइन किया जाता है और वास्तविक समय में दूर-दराज के इलाके में काम करने के लिए किसी इलेक्ट्रॉनिक्स सिस्टम यंत्र की आवश्यकता होती है। चूंकि एम्बेडेड सिस्टम विशिष्ट कार्यों के प्रति समर्पित होता है, अतः डिजाइन इंजीनियर्स, उत्पाद के आकार व लागत को घटाकर तथा विश्वसनीयता एवं प्रदर्शन को बढ़ाकर इसे अधिक उपयोगी बना सकते हैं। पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं (Economies of scale) से लाभ उठाते हुए कुछ एम्बेडेड सिस्टम्स का उत्पादन बड़े-पैमाने पर किया जाता है।

एक एम्बेडेड प्रणाली मानवीय हस्तक्षेप के बिना अपने दम पर चलने के लिए डिजाइन किया जाता है और प्रणाली के वास्तविक समय में घटनाओं पर प्रतिक्रिया करने की आवश्यकता होती है। एम्बेडेड प्रणाली का उदाहरण एक माइक्रो प्रोसेसर है जो एक ऑटोमोबाइल इंजन को नियंत्रित करता है। एम्बेडेड सिस्टम्स का विस्तार आधुनिक जीवन के सभी पहलुओं तक है और उनके प्रयोग के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। दूरसंचार तंत्र अपने नेटवर्क के टेलीफोन स्विच से लेकर अंतिम-प्रयोक्ता के मोबाइल फोन तक विभिन्न एम्बेडेड सिस्टम्स का प्रयोग करते हैं। कम्प्यूटर नेटवर्किंग में डाटा का मार्ग-निर्धारण करने के लिए समर्पित रूटर्स तथा नेटवर्क ब्रिज का प्रयोग किया जाता है। एम्बेडेड प्रणाली के कारण आज हमें कम्प्यूटर के प्रोसेसर को चुनने के लिए बहुत सारे ऑप्शन मिल जाते है कंपनियों ने ही प्रोसेसर के इतने सारे प्रकार निकाल दिए जो एक-दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं जैसे कि इनके सॉकेट अलग-अलग होते हैं, इनकी क्लॉक गति भी अलग-अलग होती है, यहाँ तक की इनके मॉडल नंबर तक एक दूसरे से अलग-अलग होते हैं। एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर का काम काफी जिम्मेदारी भरा होता है। एक कुशल एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर बनने के लिए व्यवसाय और तकनीक की अच्छी समझ होनी चाहिए क्योंकि उसे न सिर्फ एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर का खाका खींचना होता है बल्कि मॉडल में कंपनी और ग्राहक की जरूरतों के मुताबिक बदलाव भी करना पड़ता है। इसके अलावा वह प्री-डिजाइन फेज में सही डिजाइन बिन्दुओं का निर्धारण भी करता है। इसके बाद डोमेन एनालिसिस फेज आता है। जिसके तहत जरूरी क्षेत्रों को डाक्यूमेंटेशन किया जाता है। इसके बाद प्रोटोटाइप तैयार किया जाता है और साथ में रिस्क फैक्टर का अनुमान लगाया जाता है। इसके अलावा कस्टम ऑपरेटरों को प्रशिक्षित करना भी नई प्रणाली की सफलता के लिए आवश्यक होता है। इसलिए एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर को उनके प्रशिक्षण और नई प्रणाली के रख-रखाव की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। एम्बेड सिस्टम में एक सॉफ्टवेयर बनाया जाता है जो कि एक उपभोक्ता डिवाइस को नियंत्रित करता है जिसमें वास्तविक समय प्रतिक्रिया होना चाहिए। विश्लेषणात्मक और समस्याओं को हल करने की क्षमता, बेहतरीन कम्युनिकेशन स्किल्स, टीम में काम करने की क्षमता, तार्किक और तुरंत निर्णय लेने वाले तमाम गुण आपके अंदर हो तो इस क्षेत्र का चुनाव कर सकते हैं। चिप सिलिकन का काफी सूक्ष्म व पतला टुकड़ा होता है, जो इंटिग्रेटेड सर्किट के लिए आधार तैयार करता है। देखा जाए तो वीएलएसआई (अति बृहत एकीकरण सर्किट) की मांग लगभग हर क्षेत्र में होती है फिर चाहे वह ऑटोमोबाइल, कंज्यूमर इलेक्ट्रॉनिक्स या हाई-एंड सर्वर्स ही क्यों न हो। इंजीनियरिंग छात्र जो कुछ रचनात्मकता और चुनौतीपूर्ण काम करना चाहते हैं तो इस क्षेत्र का चुनाव कर सकते हैं। साथ ही इलेक्ट्रॉनिक्स के छात्र जो गणित, विश्लेषणात्मक पृष्ठभूमि और प्रोग्रामिंग में बेहतर हों उनके लिए भी यह क्षेत्र काफी सूट करता है। चिप डिजाइनर्स मुख्य रूप से डिजाइन इंजीनियर होते हैं, जो चिप के आर्किटेक्चर को डिफाइन करने के अलावा सर्किट डिजाइन क्रिएट और लेआउट सुपरवाइज करता है। बढ़ती संभावनाएँ भारत में चिप इंडस्ट्री

संभावनाएँ

एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर के रूप में कैंडीडेट कम्प्यूटर, आईटी और सॉफ्टवेयर इंडस्ट्री से संबंधित सरकारी या प्राइवेट सेक्टर की किसी भी कंपनी में अवसर पा सकता है। अगर कैंडीडेट के पास सॉफ्टवेयर डिजाइन और एनालिसिस में प्रोफेशनल एक्सपीरियंस है तो और भी बेहतर अवसर मिल सकते हैं। आर्किटेक्ट चाहे तो सॉफ्टवेयर इंस्टीट्यूट्स, आईटी इंडस्ट्री के साथ ही कम्प्यूटर कोचिंग सेंटर में भी रोजगार पा सकते हैं। ऐसे क्षेत्र जिनमें एप्लीकेशंस और मोबाइल डिवाइस भी शामिल हैं, में दिन-ब-दिन बढ़ते सॉफ्टवेयर प्रोग्राम्स की माँग के कारण एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर के सामने ढेरों विकल्प मौजूद हैं। इस क्षेत्र में सफलता के लिए कैंडीडेट में क्रिएटिविटी, कस्टमर सर्विस स्किल, विश्लेषण और समस्याओं को समाधान करने की क्षमता बेहद जरूरी है। कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में उच्च शिक्षा भी अतिरिक्त लाभ देता है. यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें वेतन भी उच्च स्तर का मिलता है।

प्रत्येक वर्ष 20-25 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। इलेक्ट्रॉनिक आइटम्स की माँग बढ़ने से एम्बेड सिस्टम इंडस्ट्री में भी करियर की अपार संभावनाएँ विकसित हो रही हैं। चिप डिजाइनिंग में कई अलग-अलग पोस्ट हैं, आप अपनी क्षमता के अनुसार इन व्यापक विकल्पों का चुनाव कर सकते हैं। आमतौर पर फ्रेशर को टेस्टिंग का कार्य सौंपा जाता है पर अनुभव होने पर आप चिप डिजाइनिंग या आर्किटेक्टिंग भी कर सकते हैं। वेतन बेहतरीन सैलरी पैकेज भी युवा कैंडिडेट्स को एम्बेड सिस्टम में आकर्षित करता है। शुरुआत में फ्रेशर्स को आसानी से 6-8 लाख सालाना पैकेज मिल जाता है। कंपनी और छात्रों की योग्यता के आधार पर भी पैकेज में फर्क होता है। तीन साल के कार्यानुभव के बाद प्रोफेशनल्स प्रत्येक महीने 80 हजार से एक लाख तक भी कमाई कर सकते हैं। एम्बेड सिस्टम में इंटीग्रेटेड सर्किट के कारण इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का आकार अत्यन्त छोटा हो गया है, उनकी कार्य क्षमता बहुत अधिक हो गयी है एवं उनकी शक्ति की जरूरत बहुत कम हो गयी है। चिप सिलिकॉन का एक छोटा और पतला टुकड़ा होता है, जो मशीनों के लिए इंटीग्रेटेड सर्किट बेस का काम करता है। चाहे वह इंस्ट्रुमेंटेशन इंजीनियरिंग का क्षेत्र हो या रोबोटिक्स, का क्षेत्र हो या ऑटोमोबाइल सेक्टर हो या कंज्यूमर इलेक्ट्रॉनिक या आज एंबेडेड सिस्टम की हर सेक्टर में काफी डिमांड है, रोजाना की जिंदगी सभी में चिप का रोल बढ़ता जा रहा है, मोबाइल, टीवी रिमोट और डिश वॉशर्स में चिप का इस्तेमाल हो रहा है, ऐसे में एंबेडेड सिस्टम डिजाइनर्स की डिमांड होना स्वाभाविक है।

एंबेडेड सिस्टम कॅरियर के क्षेत्र

इलेक्ट्रॉनिक्स में एम्बेडेड सिस्टम में वीएलएसआई (VLSI) डिजाइन के क्षेत्र में एकीकृत परिपथ या इन्टीग्रेटेड सर्किट (IC) को चिप के नाम से जाना जाता है। यह चिप के अन्दर सिलिकॉन का माइक्रोसर्किट, एक अर्धचालक पदार्थ का बना हुआ इलेक्ट्रॉनिक परिपथ होता है जिसमें प्रतिरोध, संधारित्र आदि निष्क्रिय घटक के अलावा डायोड, ट्रॉन्जिस्टर आदि अर्धचालक अवयव निर्मित किये जाते हैं। जिस प्रकार सामान्य परिपथ का निर्माण अलग-अलग अवयव जोड़कर किया जाता है, आईसी का निर्माण वैसे न करके एक अर्धचालक के भीतर सभी अवयव एक साथ ही एक विशिष्ट प्रक्रिया का पालन करते हुए निर्मित कर दिये जाते हैं। आजकल एंबेडेड सिस्टम जीवन के हर क्षेत्र में उपयोग में लाये जा रहे हैं। आजकल एंबेडेड सिस्टम का बना हुआ इलेक्ट्रॉनिक परिपथ का उपयोगकर स्टीरियो, रिमोट कंट्रोल, फोन/मोबाइल फोन, फ्रिज, माइक्रोवेव, वॉशिंग मशीन, इलेक्ट्रिक टूथब्रश, ओवन, घड़ी, अलार्म घड़ी, इलेक्ट्रॉनिक संगीत वाद्ययंत्र, इलेक्ट्रॉनिक खिलौने आदि विभिन्न प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक्स सामान बनाया जाता है। चिकित्सा के क्षेत्र में मेडिकल होम उपकरण (जैसे खून दबाव, थर्मामीटर), मेडिकल सिस्टम्स, गति निर्माता, रोगी की निगरानी प्रणाली, इंजेक्शन प्रणाली, गहन चिकित्सा इकाइयों में, दफ्तर के उपकरण जैसे प्रिंटर, कॉपियर, फैक्स मल्टीमीटर उपकरण, आस्टसीलस्कप, लाइन परीक्षक, जीपीएस, बैंकिंग में, एटीएम, बयान प्रिंटर, में परिवहन के क्षेत्र में (विमानों/रेलगाड़ियों गाडियाँ और जहाज) रडार, ट्रैफिक लाइट, सिगनल प्रणाली गाडियाँ, इंजन प्रबंधन, यात्रा कम्प्यूटर, क्रूज नियंत्रण, कार अलार्म, एयरबैग, एबीएस, ईएसपी, में, बिल्डिंग सिस्टम्स के क्षेत्र में एलिवेटर, हीटर, एयर कंडीशनिंग, प्रकाश व्यवस्था, कुंजी कार्ड प्रविष्टियों, ताले, अलार्म सिस्टम, में उपयोग में हैं। कृषि के क्षेत्र में-खिला प्रणाली, दूध देने की प्रणाली, अंतरिक्ष के क्षेत्र में उपग्रह प्रणालियों उपयोग में लाये जा रहे हैं आईटी की भाषा में कहें तो एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर बनने के लिए कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के साथ हार्डवेयर में भी उचित जानकारी जरूरी है। एम्बेड हार्डवेयर एक सेल फोन की तरह छोटा सा उपकरण है, कुछ अन्य डिवाइस, में एक छोटे

कोर्स

- *बीई/बी.टेक- एम्बेडेड सिस्टम टेक्नॉलॉजी*
- *बी.टेक. वीएलएसआई डिजाइन और एम्बेडेड सिस्टम*
- *एम.टेक एम्बेडेड सिस्टम डिजाइन*
- *एम.टेक माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक्स और वीएलएसआई डिजाइन*
- *एम.टेक वीएलएसआई डिजाइन*
- *एम.टेक वीएलएसआई डिजाइन और एम्बेडेड सिस्टम*
- *वीएलएसआई और एम्बेडेड सिस्टम में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा*
- *वीएलएसआई डिजाइन में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा*

वेतन

एक एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर की सालाना आय औसतन 10]00]000 रुपये तक हो सकती है जबकि सिस्टम सॉफ्टवेयर डेवलपर्स की12,50,000 रुपये सालाना कमाई हो जाती है। लेकिन एंबेडेड सिस्टम मेंउच्च शिक्षा एम.टेक, एमई, पीएचडी का विकल्प भी सबसे अच्छा इंजीनियरिंग कॉलेज, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी में है इसमें उच्च शिक्षा हासिल करने पर कैंडीडेट्स को वरीयता मिलती है।

प्रोसेसर के साथ स्थापित है। एम्बेड हार्डवेयर ऑटोमोबाइल में एक कार में, एक्सीलेटर, क्लच, को मशीन की तरह उपभोक्ता के लिए कार का उपयोग गति-कार्य में विविधता करना होती है। आप इस इंडस्ट्री से डिजाइन इंजीनियर, प्रोडक्ट इंजीनियर, टेस्ट इंजीनियर, एप्लीकेशन/सिस्टम्स इंजीनियर, प्रॉसेस इंजीनियर, पैकेजिंग इंजीनियर, सीएडी इंजीनियर आदि के रूप में जुड़ सकते हैं। अगर आप इंजीनियरिंग कर रहे हैं और टेक्नीकल के साथ-साथ कोई चैलेंजिंग और क्रिएटिव वर्क भी करना चाहते हैं, तो चिप डिजाइनिंग में करियर बना सकते हैं। एंबेडेड सिस्टम में शामिल सॉफ्टवेयर जिसे पढने और उस क्षेत्र में काम करने में दिलचस्पी रखते हों इंजीनियर का मुख्य कार्य सॉफ्टवेयर डिजाइन, प्रोडक्शन, टेस्टिंग, एप्लीकेशंस और प्रॉसेस इंजीनियरिंग से जुड़ा होता है। इस क्षेत्र से जुडने के लिए इलेक्ट्रॉनिक्स, टेली कम्यूनिकेशन या कम्प्यूटर साइंस में बीई या बीटेक की डिग्री होनी जरूरी है। जो लोग इस फील्ड में आना चाहते हैं उन्हें टेक्नॉलॉजी डेवलपमेंट्स से अपडेट रहना होगा और लेटेस्ट इनोवेशंस की जानकारी रखनी होगी। आईसी (Integrated circuit) से संबंधित जानकारी के अलावा आपको असेम्बली लेवल प्रोग्रामिंग व सी प्रोग्रामिंग का भी ज्ञान ज़रूरी है। इलेक्ट्रॉनिक स्ट्रीम के स्टूडेंट्स, जिनकी मैथमेटिकल और एनालिटिकल स्किल अच्छी होती है, वे कामयाब एंबेडेड सिस्टम डिजाइनर बन सकते हैं। वैसे, जिन्हें कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के साथ हार्डवेयर की पर्याप्त नॉलेज होती है, उनके लिए भी इसमें काफी मौके हैं। जो लोग इस फील्ड में आना चाहते हैं, उन्हें टेक्नॉलॉजी डेवलपमेंट्स से अपडेट रहना होगा और लेटेस्ट इनोवेशंस की जानकारी रखनी होगी। वहीं, कम्युनिकेशन और टीम में काम करने जैसी पर्सनल स्किल्स भी जरूरी हैं। एम्बेडेड सिस्टम के साथ हार्डवेयर की पर्याप्त नॉलेज होती है, उनके लिए भी इसमें काफी मौके हैं। जो लोग इस फील्ड में आना चाहते हैं, उन्हें टेक्नॉलॉजी डेवलपमेंट्स से अपडेट रहना होगा और लेटेस्ट इनोवेशंस की जानकारी रखनी होगी। वहीं, कम्युनिकेशन और टीम में काम करने जैसी पर्सनल स्किल्स भी जरूरी हैं। एम्बेडेड सिस्टम के साथ वीएलएसआई डिजाइन (बड़े पैमाने पर सर्किट का एकीकरण) का कोर्स भी किया जाता है। आमतौर पर एम्बेड हार्डवेयर का अनुप्रयोग कम्प्यूटर में फ्लैश और रोम (ROM) में अनुप्रयोग सॉफ्टवेयर समवर्ती कार्यों की संख्या पर निर्भर करता है एंबेडेड सिस्टम में स्पेशलाइजेशन से मैन्युफैक्चरिंग, कृषि, खनन, परमाणु, ऊर्जा संयंत्र जैसे क्षेत्रों में कॅरियर निर्माण के दरवाजे खुल जाते हैं। इसके साथ ही रोबोटिक्स इंजीनियरों की माइक्रोचिप बनने वाले उद्योगों में भी खासी माँग हैं।

इलेक्ट्रॉनिक स्ट्रीम के स्टूडेंट्स, जिनकी मैथमेटिकल और एनालिटिकल स्किल स्ट्रॉन्ग होती है, वे कामयाब एंबेडेड सिस्टम डिजाइनर बन सकते हैं। वैसे, जिन्हें कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के साथ हार्डवेयर की पर्याप्त नॉलेज होती है, उनके लिए भी इसमें काफी मौके हैं। जो लोग इस फील्ड में आना चाहते हैं, उन्हें टेक्नोलॉजी डेवलपमेंट्स से अपडेट रहना होगा और लेटेस्ट इनोवेशंस की जानकारी रखनी होगी। वहीं, कम्युनिकेशन और टीम में काम करने जैसी पर्सनल स्किल्स भी जरूरी हैं। एम्बेडेड सिस्टम के साथ वीएलएसआई डिजाइन(बड़े पैमाने पर सर्किट का एकीकरण) का कोर्स भीकिया जाताहै।

योग्यता

एम्बेडेड प्रणाली में विशेष योग्यता हेतु आईटी में विशेषज्ञता के साथ बीई, बीटेक, एमई, एमटेक होना जरूरी है। इसके अलावा सिस्टम आईटी में विशेष योग्यता के साथ एम्बेडेड प्रणाली में करने वाले अभ्यर्थी भी इस क्षेत्र में अपना भाग्य आजमा सकते हैं। एक एंबेडेड सिस्टम एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर और सॉफ्टवेयर इंजीनियर, दोनों प्रोफेशनल्स एक ही क्षेत्र यानी सॉफ्टवेयर प्रोग्रामिंग में काम करते हैं। हालांकि वे एक ही क्षेत्र में काम करते हैं फिर भी दोनों की जॉब प्रोफाइल कई मायनों में भिन्न होती है। सॉफ्टवेयर इंजीनियर के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत विभिन्न टास्क के लिए डिजाइनिंग, कोडिंग और सॉफ्टवेयर के निष्पादन के कार्य होते हैं जबकि एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर सॉफ्टवेयर के संपूर्ण डेवलपमेंट का डिजाइन तैयार करता है लेकिन उनके कार्यक्षेत्र में कोडिंग शामिल नहीं होती। एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर अपने क्लाइंट्स से बात करके उनकी आवश्यकताओं को समझता है वहीं सॉफ्टवेयर इंजीनियर का काम सॉफ्टवेयर आर्किटेक्चर के इंस्ट्रक्शन का पालन करना होता है। एम्बेडेड प्रणाली के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए मैकेनिकल, इंस्ट्रुमेंटेशन, इलेक्ट्रिकल या कम्प्यूटर इंजीनियरिंग का अध्ययन करने की आवश्यकता होती है। वास्तव में एम्बेडेड प्रणाली इनके तालमेल का ही रूप है। इसलिए एम्बेडेड प्रणाली में सुविज्ञता हासिल करने के लिए इन चार क्षेत्र का गहन ज्ञान अपेक्षित है। इस क्षेत्र में कुछ इंजीनियरिंग

संस्थानों द्वारा आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, वीएलएसआई, रोबोटिक्स, एडवांस्ड रोबोटिक्स सिस्टम्स, इंस्ट्रुमेंटेशन कंट्रोल इंजीनियरिंग, इमेजिंगप्रोसेस, न्यूरल नेटवर्क्स तथा फुजीलाजिक्स पर विशेष कोर्स संचालित किए जाते हैं।

कार्य

एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर वह होता है जो भिन्न-भिन्न सॉफ्टवेयर का उपयोग इंस्ट्रुमेंटेशन इंजीनियरिंग में सिस्टम चलाने के लिए कार्य करता है और सिस्टम इंजीनियर सॉफ्टवेयर इंजीनियर बन जाता है। सॉफ्टवेयर लैंग्वेजेज की अच्छी जानकारी के साथ एंबेडेड सिस्टम इंजीनियर को इंटैलेक्चुअल नॉलेज की भी जरूरत होती है जिससे वह सॉफ्टवेयर डिजाइन बना सके, एंबेडेडसिस्टम इंजीनियर को यांत्रिक का ज्ञान आवश्यक है। किसी भी एंबेडेड सिस्टम इंजीनियरर के लिए जरूरी है कि वह नये सॉफ्टवेयर लैंग्वेजेज से अप-टू-डेट रहे। सफलता के लिए 10+2 (भौतिकी, रसायन, गणित) की पढ़ाई मान्यता प्राप्त बोर्ड से करें। इसके बाद एंबेडेड सिस्टम या सॉफ्टवेयर इंजीनियरिंग में ग्रेजुएशन कोर्स करें। एंबेडेड सिस्टममेंसी-डैक, एप्पल द्वारा लघु अवधि के पाठ्यक्रम भी है।

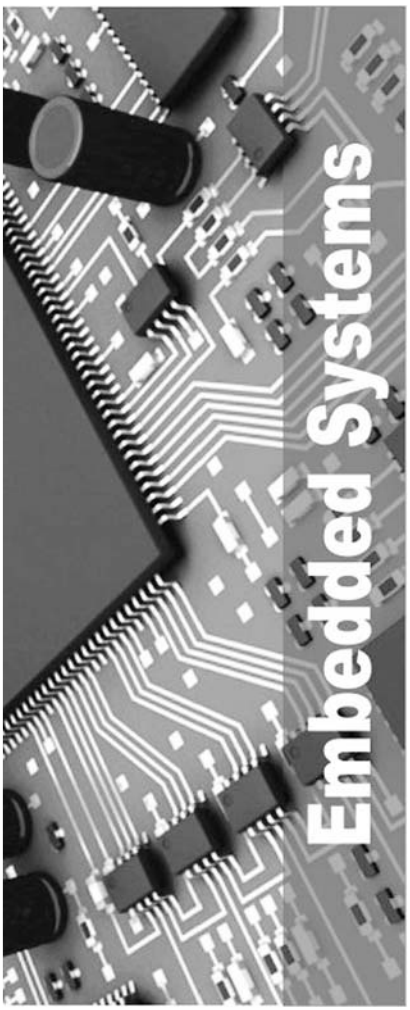

प्रमुख संस्थान

- डॉ.सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, बिलासपुर
- आईसेक्ट विश्वविद्यालय, भोपाल
- बिटमैपर इंट्रीगेशन टेक्नॉलॉजी, पुणे,
- महाराष्ट्र सेंट्रल फॉर डेवलपमेंट ऑफ एडवांसड कंप्यूटिंग, बेंगलूर
- अन्ना यूनिवर्सिटी, चेन्नई
- इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी, खडगपुर
- नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी, केरल
- भारतीय विद्यापीठ, कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, पुणे
- बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू), वाराणसी
- पेट्रोलियम एंड एनर्जी स्टडीज विश्वविद्यालय, देहरादून
- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई
- दिल्ली विश्वविद्यालय ,नई दिल्ली
- मद्रास विश्वविद्यालय,चेन्नई
- इंडियन स्कूल ऑफ माइंस, धनबाद
- जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय , नई दिल्ली
- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर उत्तर प्रदेश
- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और रोबोटिक्स प्रौद्योगिकी संस्थान , बंगलोर
- राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना
- बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी एण्ड साइंस, पिलानी
- जादवपुर विश्वविद्यालय, कोलकाता
- पीएसजी कॉलेज, कोयम्बटूर
- श्री सत्य साई इंस्टिट्यूट , चेन्नई(तमिलनाडु)
- एसआरएम विश्वविद्यालय, कांचीपुरम

goswamisanjay80@yahoo.com

❑❑❑

आईसेक्ट समाचार

आईसेक्ट-एनएसडीसी के रोजगार मेला

भारत में कौशल विकास के क्षेत्र में अग्रणी स्तर पर कार्य कर रही संस्था आईसेक्ट ने भारत सरकार के नेशनल स्किल डेवलपमेंट कार्पोरेशन (एन.एस.डी.सी.) के साथ मिलकर भोपाल में रोजगार मेले का आयोजन किया, जो कि सभी प्रतिभागियों के लिए पूरी तरह निःशुल्क था। सुबह 9 बजे से प्रांरभ हुए इस रोजगार मेले में सुबह से ही युवाओं का रूझान दिखाई दिया। रोजगार मेले में शामिल होने आए लगभग 1 हजार युवाओं के रजिस्ट्रेशन के बाद देश की प्रतिष्ठित 25 कंपनियों के प्रतिनिधियों द्वारा साक्षात्कार लिए गए। रोजगार मेले में शामिल होने आए युवा पूरे समय इस मेले को लेकर खासे उत्साहित नज़र आए। इस रोजगार मेले का उद्देश्य बेरोजगार तथा कुशल युवाओं को राष्ट्रीय व स्थानीय नियोक्ताओं के माध्यम से रोजगार प्रदान करना है। आईसेक्ट-एन.एस.डी.सी. रोजगार मेला ग्रामीण एवं अर्धशहरी क्षेत्रों के प्रशिक्षित युवाओं को स्थानीय स्तर पर नियुक्ति के अवसर प्रदान करेगा। साथ ही इन रोजगार मेलों में 25 से अधिक राष्ट्रीय व स्थानीय स्तर की कंपनियाँ आ रही है। इसमें मुख्य रूप से रिलायंस एचआर, एजिस लिमिटेड, डिश टीवी, वर्धमान यार्न, बीबीबी मैन पावर, ट्राइफिड रिसर्च, यूरेका फोर्ब्स, शिवशक्ति, एचसीएल टैलेंट केयर, मार्केट मेग्निफाई, मैग्नम बीपीओ, साई फोर्ड, राजपाल होंडा प्रमुख है। आवेदक की शैक्षणिक योग्यताओं और अनुभव के आधार पर यह कंपनियाँ 5 हजार से 20 हजार रूपए तक मासिक वेतन चयनित उम्मीदवारों को देंगी। आईसेक्ट के निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी के अनुसार, इस तरह के रोजगार मेले ग्रामीण व अर्धशहरी क्षेत्रों में बेरोजगारों व प्रशिक्षित युवाओं को एक प्लेटफार्म उपलब्ध कराते हैं जहाँ से उनके रोजगार के अवसर बढ़ते हैं। ग्रामीण युवाओं के कौशल विकास के लिए पूरे देश में काम हो रहा है। परंतु इन प्रशिक्षित युवाओं को रोजगार प्रदान करना भी लक्ष्य होना चाहिए। इसी उद्देश्य से आईसेक्ट ने यह पहल की है और आईसेक्ट-एनएसडीसी रोजगार मेला इस प्रयास का प्रारंभिक चरण है।

आईसेक्ट की कौशल विकास यात्रा

आईसेक्ट की कौशल विकास यात्रा दिनाँक 15 सितम्बर से 10 अक्टूबर तक देश के 19 राज्यों 275 जिलों एवं 480 शहरों में आयोजित हुई। इसका लक्ष्य लगभग 5 लाख छात्रों तक कौशल विकास के महत्व को पहुँचाना है। गौरतलब है कि आईसेक्ट द्वारा युवाओं में कौशल विकास के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए प्रति वर्ष कौशल विकास यात्रा निकाली जाती है। यह यात्रा संपूर्ण प्रदेश के भोपाल, इंदौर, उज्जैन, खंडवा, जबलपुर, शहडोल, रीवा, छतरपुर और ग्वालियर रीजन में निकाली गई जिससे जो प्रदेश के सभी जिलों में ब्लॉक और ग्रामीण स्तर पर युवाओं के बीच कौशल विकास आधारित गतिविधियाँ आयोजित हुई। साथ ही सेमिनार व अन्य गतिविधियों के माध्यम से युवाओं को कौशल विकास के महत्व से परिचित कराया गया। आईसेक्ट के नेशलन नेटवर्क मैनेजर राजेश पण्डा के अनुसार आईसेक्ट द्वारा लगातार छठवीं बार कौशल विकास यात्रा का आयोजन आयोजन हुआ जिससे देश के जमीनी स्तर पर लोगों को स्किल डेवलपमेन्ट से जोड़ा गया। उन्होंने बताया कि कौशल भारत मिशन की शुरुआत के साथ ही कौशल विकास यात्रा को एक मंच के रूप में प्रचार के लिये उपयोग किया जा रहा है। साथ ही सरकार की विभिन्न प्रकार की योजनाओं का भी प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। हमारे प्रधानमंत्री जी का भी यही सन्देश है कि, भारत पूरी दुनिया के लिये कौशल की राजधानी बने। सृजन के लिये जागरूकता एवं विकास के लिये कौशल की आवश्यकता होती है। जो के देश के कोने-कोने मे होना जरूरी हैं। मुझे विश्वास है कि कौशल विकास यात्रा इस प्रक्रिया को बढ़ाने में सक्षम होगी।

शब्द ध्वनि और दृश्य का समापन

शब्द, दृश्य और ध्वनि के कलात्मक अहसासों के साथ रवीन्द्र भवन के मंच पर कविता, संगीत और अभिनय ने मिलकर अभिव्यक्ति के अनूठे आयाम रच दिए। संतोष चौबे की कविताओं के साथ हुए इस नायाब प्रयोग को शहर की साहित्य बिरादरी और कला प्रेमियों ने समान रूप से सराहा। लगभग एक दर्जन चुनिंदा कविताओं को संतोष कौशिक के संगीत और मनोज नायर की नाट्य परिकल्पना ने बेशक एक नया ही स्वरूप प्रदान किया। इस तरह साहित्य को देखकर सुनने और उससे अंतरंग होने की यह एक अनूठी शाम थी। इस अवसर पर मुंबई से खासतौर पर पधारीं रंगमंच और सिनेमा की जानी-मानी अभिनेत्री प्रीता ठाकुर ने सभी कलाकारों को यादगार प्रस्तुति के लिए मंच पर सम्मानित किया।

वनमाली सृजनपीठ और आईसेक्ट विश्वविद्यालय तथा शहर की अग्रणी सांस्कृतिक संस्थाओं के साथ मिलकर आयोजित चार दिवसीय समारोह का यह समापन सत्र था। मंचन से पूर्व संतोष चौबे को उनके जन्मदिन पर साहित्य-कला तथा शिक्षा से जुड़े संगठनों की ओर से सम्मानित किया गया। श्री चौबे ने इस मौके पर अपनी कविताओं का पाठ कर जीवन के गहरे अनुभव ओर सामाजिक सरोकारों के प्रति सृजनात्मक दायित्व का परिचय दिया। कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने कविता, संगीत और अभिनय से जुड़े पहलुओं पर अपना वक्तव्य दिया। मंचन की विषय वस्तु संतोष कौशिक ने प्रस्तुत की। समारोह में आईसेक्ट स्टूडियों द्वारा निर्मित लघु फिल्म का प्रदर्शन भी किया गया जो श्री चौबे के सांस्कृतिक व्यक्तित्व को रेखांकित करती है।

माइम विशेषज्ञ मनोज नायर ने दृश्य अभिनय प्रकाश और देह गतियों का सटीक ताना-बाना रचते हुए चौबे की उन कविताओं को चुना जिनमें माí, मौसम, रिश्तें, स्मृतियां, सपने और अपने वक्त की विसंगतियों से जुझते हालातों की आवाजें व्यक्त हुई है। इस चयन में कविता आना जब मेरे अच्छे दिन हो, अम्मा का रेडिया, माँ को दुख है, इधर घर बनाया है शहर से दूर, जीवनवृत्त, दायित्व मुझे छोड़ो, नदी ने तड़पकर कहा, देखी आग-आग की कविता, हरी धूप... कविताएं शामिल की गईं। इस प्रयोग में आलोक तायड़े, वसीम खान, आकाश श्रीवाल, आदर्स ठच्सू, आमिर खान, राघवेन्द्र सिंह, हर्षा जायसवाल, कविता शाजी, शामल कटबे, सोनिया, स्मिता नायर, रश्मि आचार्य, अलय खान, अभि श्रीवास्तव ने अभिनय किया। प्रकाश परिकल्पना कमल जैन की थी।

कौशल विकास यात्रा भव्य स्वागत
28 एमडीएल 1 बीजाडांडी

अनुश्री कम्प्यूटर प्वाइंट बीजाडांडी व अनुश्री शिक्षा सामाजिक एवं निशक्त उत्थान समिति द्वारा आईसेक्ट सेंटर में कौशल विकास यात्रा का पुष्प वर्षा के साथ स्वागत किया। कार्यक्रम का शुभारंभ सरस्वती वंदना व स्वागत गीत से किया गया। मंचासीन अतिथियों का स्वागत अनुश्री कम्प्यूटर के प्रमुख आदित्य मिश्रा द्वारा किया गया।

छात्रों को संबोधित करते हुए आईसेक्ट राज्य समन्वयक निशांत श्रीवास्तव ने कहा कि आईसेक्ट गत 35 वर्षों से शिक्षा एवं समाजिक क्षेत्र में काम कर रहा है और निरंतर कौशल को बढ़ावा देने का कार्य कर रहा है। साथ ही इन्होंने छात्रों को महत्वपूर्ण जानकारी दी कि आईसेक्ट विश्वविद्यालय के अंतर्गत समस्त कोर्स के डिप्लोमा, डिग्री सभी शासकीय कार्यालयों में मान्य है। इसमें किसी भी प्रकार से आप भ्रमित न हो। आपके विकासखण्ड में शीघ्र ही प्रधानमंत्री कौशल विकास केन्द्र की स्थापना की जायेगी इसके लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

छात्रों को बीईओ आरके कनौजिया ने भी संबोधित करते हुए कहा कि ग्रामीण क्षेत्रों में आईसेक्ट का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है जो निचले स्तर पर जाकर कौशल केन्द्र स्थापित कर रहा है जिससे छात्रों को निशुल्क शिक्षा प्राप्त होने का विकल्प खुल रहा है। इसी तरह बीएमओ डॉ. दिलीप अहिरवार, उत्कृष्ट प्राचार्य अर्चना नेमा एवं बीआरसी मोहन यादव ने छात्रों को संबोधित करते हुए कहा कि जीवन में कौशल की आवश्यकता है इसके बिना कोई भी कार्य सुचारू रूप से नहीं हो सकता। भारत सरकार के द्वारा कौशल को बढ़ावा देने के लिए ही कौशल विकास केन्द्रों की स्थापना की जा रही है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों की छात्र-छात्राएँ भी निपुण होकर अपने जीवन स्तर में सुधार ला सके।

हार्मोनी 2016 आयोजित

आईसेक्ट विश्वविद्यालय में फ्रेशर्स पार्टी 'हार्मोनी 2016' का आ आयोजन किया गया। आयोजन में नृत्य, गीत और क्लासिकल संगीत की मोहक प्रस्तुतियाँ दी गई। कार्यक्रम में जूनियर्स डिफरेंट थीम और स्टाइल में नज़र आये। जहाँ एक तरफ अपने स्टाइल और ड्रेसिंग सेंस से जजेस को इंप्रेस करना था वहीं, दूसरी ओर जजेस पैनल में डॉ. रितुकुमारन, विभागाध्यक्ष अंग्रेजी, डॉ. शीतल गुलाटी प्रोफेसर रसायन शास्त्र, डॉ. दीप्ति महेश्वरी विभागाध्यक्ष वाणिज्य संकाय ने कई सवाल पूछकर आईक्यू लेवल भी परखा। बीई छात्र अभिंचल चतुर्वेदी और बीकॉम की छात्रा पूजा पटेल ने मिस्टर फ्रेशर व मिस फ्रेशर के खिताब जीता, वहीं साकेत कुमार मिश्रा (बीबीए) और गीतिका वर्मा (बीबीए) ने क्रमशः मिस्टर ईव और मिस ईव का टाइटल जीता। बेस्ट स्माईल (मेल) संजीत कुमार, बेस्ट स्माईल (फीमेल) बीएससी की हिमांशी, बेस्ट पर्सनालिटी मेल आशुतोष, बेस्ट पर्सनालिटी फीमेल बीपीटी की पारुल रहीं तथा बेस्ट ड्रेस मेल शिवम चौहान और बेस्ट ड्रेस फीमेल कृष्णानाथ रहीं।

कार्यक्रम का शुभारंभ आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. ए.के.ग्वाल, कुलसचिव डॉ. विजय सिंह, डीन एकेडमिक डॉ. संजीव गुप्ता ने दीप प्रज्ज्वलन कर किया। प्रो. ए.के.ग्वाल, ने इस अवसर कहा कि आपका कॉम्पिटीशन आज इस स्टेज से प्रारंभ होकर उज्ज्वल भविष्य बनाने तक जारी रहेगा। मेरी शुभकामनाएँ आप लोगों के साथ हैं। कुलसचिव डॉ. विजय सिंह ने भी प्रथम वर्ष के छात्रों का स्वागत किया एवं उन्हें मार्गदर्शन भी दिया। डीन एकेडमिक डॉ. संजीव गुप्ता ने नए छात्रों का स्वागत करते हुए कहा कि आप सभी सद्भाव के साथ रहें और अनुशासन का पालन करें।

सेक्ट कॉलेज की फ्रेशर पार्टी

सेक्ट कॉलेज ऑफ प्रोफेशनल एजुकेशन में सीनियर विद्यार्थियों द्वारा जूनियर विद्यार्थियों के लिये फ्रेशर पार्टी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विद्यार्थियों ने गीत, नृत्य, कविताएँ प्रस्तुत की। महाविद्यालय के मिस एवं मिस्टर फ्रेशर का चुनाव किया गया, जिसमें सचिन परमार बी.सी.ए. प्रथम वर्ष से मि. फ्रेशर एवं स्वाति शुक्ला बी.एस.सी. प्रथम वर्ष से मिस फ्रेशर चुनी गयी।

गरबा महोत्सव का आयोजन

संस्कार, संस्कृति और भक्ति संगीत का भव्य समागम माँ दुर्गा की आरती के साथ लगातार तीसरे वर्ष आईसेक्ट विश्वविद्यालय के विशाल मैदान में गरबा महोत्सव का आयोजन किया गया। इस अवसर पर कुलसचिव डॉ. विजय सिंह ने दीप प्रज्जवलित कर व मां दुर्गा की आरती कर गरबा महोत्सव का शुभारंभ किया। रंग-बिरंगी वेश-भूषा के अलावा अलग-अलग रूप धरकर फैकल्टी मेंबर्स व छात्र-छात्राएँ अलग अंदाज में दिखे। कृष्ण रासलीला के साथ शुरू हुए इस कार्यक्रम में गरबेरियंस ने जमकर कदमताल मिलाये। इस अवसर पर छात्र-छात्राओं ने देश की एकता और अखंडता को प्रदर्शित करते हुए विभिन्न सांस्कृतिक प्रस्तुतियां दीं। विश्वविद्यालय पुस्तकालयाध्यक्ष के डॉ. राकेश खरे के बांसुरीवादन ने सबका मन मोह लिया। कार्यक्रम के अंत में डीजे के थाप पर सभी दर्शक भी झूमने पर मजबूर हो गये। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने देश के अलग-अलग राज्यों के लजीज व्यंजन के स्टाल्स लगाए साथ ही गेम जोन भी बनाए जिसका दर्शकों ने जमकर आनंद लिया।

❑❑❑

विज्ञान मॉडल कार्यशाला

न्यूटन के नियम, बर्नोली थ्योरम, आप्टिकल इल्यूजन, मैकेनिक्स, एंगल ऑफ विजन आदि विज्ञान के सिद्धांतों को मॉडल्स के द्वारा विज्ञान शिक्षकों व विद्यार्थियों को वरिष्ठ विज्ञान लेखक व संचारक बृजेश दीक्षित ने सरलता से समझाया। वे विज्ञान संचार केन्द्र आईसेक्ट विश्वविद्यालय में आयोजित विज्ञान मॉडल्स की कार्यशाला में विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। बृजेश दीक्षित ने विज्ञान के जटिल सिद्धांतों को न सिर्फ ब्लैक बोर्ड पर बल्कि खुद से मॉडल्स तैयार कर क्लास रूम में विद्यार्थियों के समक्ष शिक्षण का एक नया नवाचार प्रस्तुत किया है।

कार्यक्रम के प्रारंभ में विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. ए.के.ग्वाल ने सभी का स्वागत करते हुए कहा कि यह कार्यशाला विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों को समझने का एक प्रयास है। विश्वविद्यालय में इस प्रकार की कार्यशालाएँ समय-समय पर आयोजित की जाती हैं। जिसका सीधा लाभ विद्यार्थियों को मिलता है। इस मौके पर विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ. विजय सिंह ने कहा कि विज्ञान मॉडल की ये कार्यशाला एक अभिनव प्रयास है जिसे विश्वविद्यालय समय-समय पर आयोजित करता आ रहा है। डॉ.एस.आर. अवस्थी, डायरेक्टर विज्ञान संचार केन्द्र आईसेक्ट विश्वविद्यालय ने शिक्षकों और विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि विज्ञान सीधे जनकल्याण से जुड़ा हुआ है। अब विद्यार्थियों को विज्ञान को देखने व समझने का नजरिया बदलना होगा। बृजेश दीक्षित ने छात्रों को संबोधित करते हुए कहा कि आज भी हम लार्ड मैकाले की ब्लैक बोर्ड टीचिंग पद्धति पर निर्भर हैं जबकि हमें डेमांस्ट्रेशन पद्धति को अपनाना चाहिए।

इस अवसर पर आईसेक्ट विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध ओडिसी नृत्यांगना कविता द्विवेदी द्वारा ओडिसी नृत्य की आकर्षक प्रस्तुति दी गई। कविता द्विवेदी ने 'मुरली को बजाने वाले कृष्ण कहाँ गये, 'उड़िया' भजन पर नृत्य प्रस्तुत किया। उन्होंने अभिनव और पल्लवी की प्रस्तुति कर दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस अवसर पर डीन एकेडिक डॉ. संजीव गुप्ता, भोपाल, रायसेन, मण्डीदीप, औबेदुल्लागंज के विद्यालयों के विज्ञान शिक्षक और विद्यार्थी विशेष रूप से उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. संगीता पाठक ने किया। कुलसचिव डॉ. विजय सिंह ने अतिथियों को स्मृति चिन्ह भेंट किये।

❑❑❑

डॉ. अवस्थी का विज्ञान परिषद प्रयाग में व्याख्यान

आईसेक्ट विश्वविद्यालय के सेंटर फॉर साइंस कम्युनिकेशन के निदेशक डॉ. शंभू रतन अवस्थी ने सिंहस्थ 2016 और जलवायु परिवर्तन विषय पर व्याख्यान देते हुए जलवायु परिवर्तन को 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती बताया। उन्होंने स्पष्ट किया कि समस्या जलवायु परिवर्तन की नहीं, बल्कि जलवायु अनियमितता की है। इसका मुख्य कारण प्रातिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन और जंगलों का उजड़ना है। पर्यावरण प्रदूषण के लगातार बढ़ने से पूरे विश्व में जलवायु में परिवर्तन आ रहा है। वह विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा आयोजित डॉ. गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यानमाला में अपने उदगार व्यक्त कर रहे थे। उन्होंने आगे कहा कि इस समस्या के समाधान के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी ऊर्जा जरुरतों के लिए पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की अपेक्षा वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आादि को चुनें। समाधान के कुछ बिंदु उज्जैन में संपन्न सिंहस्थ-2016 से निकले हैं, जैसे क्षिप्रा नदी सूख चुकी है। इसमें नर्मदा जल पहुँचाया गया है। यह एक अस्थायी समाधान है। स्थायी समाधान के रूप में यह निर्णय लिया गया कि मध्य प्रदेश शासन और संत समाज मिलकर क्षिप्रा एवं नर्मदा नदियों के किनारे एवं पहाड़ों पर इतना वृक्षारोपण करेंगे कि अगले सिंहस्थ तक क्षिप्रा सदानीरा बन जाए।

डॉ. अवस्थी ने सतत विकास की अवधारणा पर आधारित दो मॉडल प्रस्तुत किए विज्ञान परिषद प्रयाग एवं इलाहाबाद शहर के लिए। इसी प्रकार गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्होने कुटीर उद्योगों पर बल देते हुए कहा है कि हमें रोजगार मूलक साथ ही पर्यावरण दृष्टि से सुरक्षित परंपराओं को अपनाने की आवश्यकता है। जैसे प्लाास्टिक के स्थान पर दोना पत्तल, कुल्लड़, घड़े, कागज के लिफाफे, कपड़े की थैलियाँ, जूते-चप्पल आदि को बढ़ावा एवं संरक्षण। व्याख्यान की समाप्ति पर अमर शहीद चंद्र शेखर आजाद को स्मरण करते हुए डॉ. अवस्थी ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजली अर्पित की। श्रोताओं को आईसेक्ट की विज्ञान व सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित मासिक पत्रिका 'इलेक्ट्रानिकी आपके लिए' की प्रति भेंट की गई।

❑❑❑

विज्ञान का ऐतिहासिक पृष्ठ

आखिरी पन्ना

मैंने आठ साल की उम्र से ही अपने पिता को सहयोग दिया। अपनी विज्ञान संबंधी अधिकतर जानकारी मैंने उनके प्रशिक्षु के रूप में हासिल की। विश्वविद्यालय की मेरी डिग्री शास्त्रीय विषयों की है, न कि विज्ञान की।

●

बचपन में मेरी परवरिश किसी धार्मिक मत के दायरे में नहीं, बल्कि एक ऐसे घर में हुई जहाँ विश्वास की जगह विज्ञान और दर्शन ने ली थी। अपने लड़कपन में ही समकालीन विचारों से मेरा संपर्क अक्सर होता रहता था। यही वजह है कि आज मुझे न तो आइंस्टीन को समझने में दिक्कत होती है और न ही मुझे फ्रायड के विचार स्तब्ध करते हैं। अपने युवाकाल में मुझे युद्ध लड़ना पड़ा और मैंने मानव–चरित्र के ऐसे पक्षों को महत्व देना सीखा जिनसे सामान्य बुद्धिजीवी का संपर्क नहीं हो पाता। अब परिपक्व होकर मैं जीव–विज्ञानी बन चुका हूँ। संसार को मैं जिस नजरिए से देखता हूँ उससे मुझे एक अपरिचित अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है पर मेरा विचार है कि यह पूरी तरह गुमराह करने वाली नहीं है। स्कूल में मैंने शास्त्रीय ज्ञान यानी लैटिन और ग्रीक की पढ़ाई से चौदह साल की उम्र में मुँह मोड़ लिया और अपने पिता के पूरे समर्थन से रसायन, भौतिकी, इतिहास और जीव विज्ञान की पढ़ाई की। इस बात से मेरे हैडमास्टर काफी खफा थे। उनका कहना था कि मैं अल्पज्ञानी बनता जा रहा हूँ।

जे.बी.एस. हाल्डेन

●

शायद मेरी अपनी सबसे महत्वपूर्ण खोज यह है कि पौधों, पतंगों और चूहों में साइटोक्रोम आक्सीडेज नामक पदार्थ पाया जाता है। इसके साथ अभिक्रिया करने के लिए ऑक्सीजन और कार्बन मोनोऑक्साइड में होड़–सी लगी रहती है। इस खोज के बारे में सबसे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मैं पतंगों को चीरे–फाड़े या मारे बिना उनके मस्तिष्क में मौजूद इस पदार्थ के बारे में काफी जानकारी हासिल कर सका। वैसे एंजाइम रसायन के बारे में मेरे द्वारा प्रतिपादित कुछ सामान्य सिद्धांत संभवत: इससे अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं।

●

मेरे विज्ञान–संबंधी कार्यों में विविधता रही है। मानव शरीर विज्ञान के क्षेत्र में मुझे अमोनिया क्लोराइड एवं ईथर लवणों को अधिक मात्रा में ग्रहण किए जाने के कारण शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में किए गए काम की वजह से जाना जाता है। लेड और रेडियम के जहरीले असर के इलाज में इस काम का कुछ उपयोग किया जाता रहा है। आनुवंशिकी के क्षेत्र में सबसे पहले मैंने ही स्तनधारियों में सहलग्नता की खोज की। मनुष्य के गुणसूत्रों का नक्शा बनाया और (पेनरोज के साथ) मानव जीव की उत्परिवर्तन दर का आंकलन किया। मैंने गणित के क्षेत्र भी कुछ मामूली खोजें कीं।

●

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली बच्चों को उचित अवसर नहीं देती और व्यावहारिक स्तर पर किसी को विज्ञान के सत्य की शिक्षा मानवीय दृष्टि से नहीं दी जाती। बच्चों को विज्ञान–संबंधी शुरुआती शिक्षा एक निष्क्रिय अथवा निर्धारित ढंग गतिशील काल्पनिक शरीर की सहायता से नहीं, बल्कि असली मानव शरीर की मदद से दी जानी चाहिए। मुझे तीन साल की उम्र से ही इसी तरीके से शिक्षा दी गई थी।

(विभिन्न अवसरों पर दिए गए वक्तव्यों के अंश)